# जैनधर्म की कहानियाँ

## भाग – 5

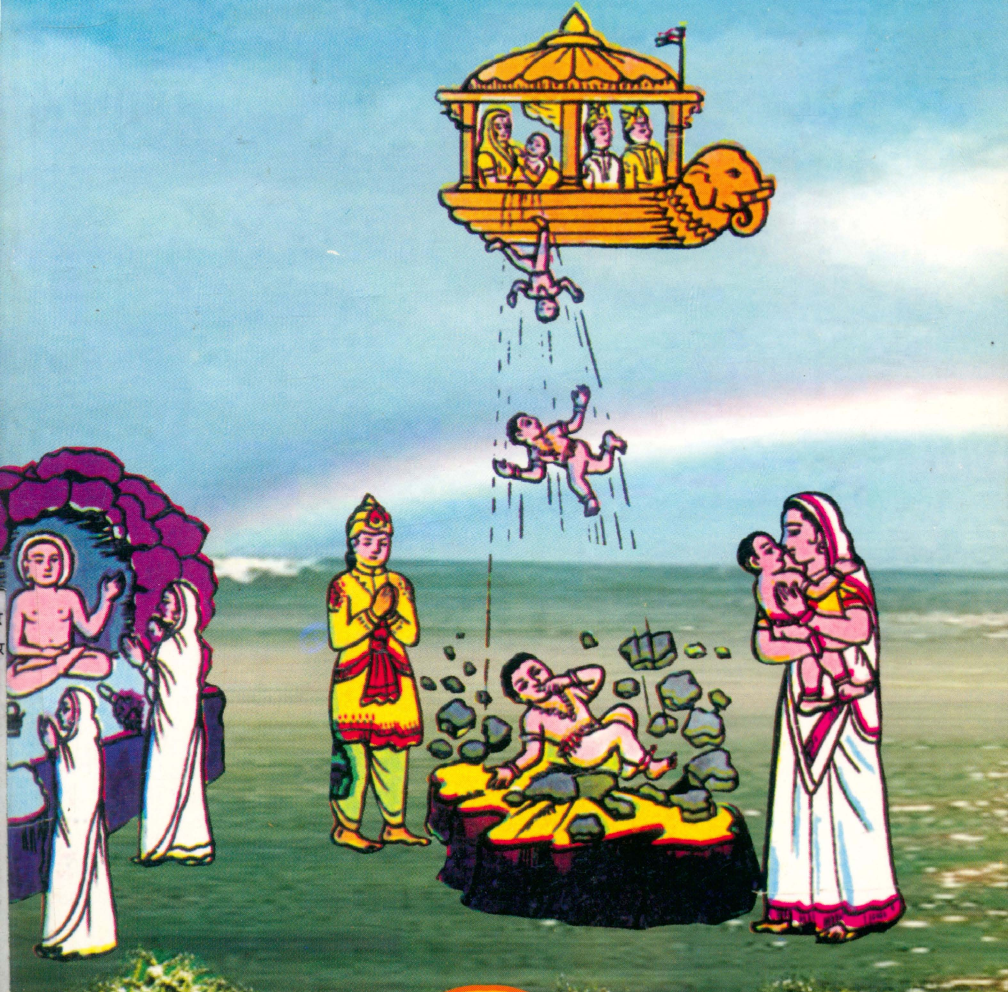

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन–खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन – सोनगढ़

# श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला संक्षिप्त परिचय

**श्री खेमराज गिड़िया**

**श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया**

जिनके विशेष आशीर्वाद व सहयोग से ग्रन्थमाला की स्थापना हुई तथा जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य प्रकाशित करने का कार्यक्रम सुचारु रूप से चल रहा है, ऐसी इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

**जन्म :** सन् 1919 चांदरख (जोधपुर)

**पिता :** श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

**शिक्षा/व्यवसाय :** मात्र प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र 12 वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।

**सत्-समागम :** सन् 1950 में पूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

**ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा :** मात्र 34 वर्ष की उम्र में सन् 1953 में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली।

**परिवार :** आपके 4 पुत्र एवं 2 पुत्रियाँ हैं। पुत्र – दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल एवं प्रेमचंद। तथा पुत्रियाँ – ब्र. ताराबेन एवं मैनाबेन। दोनों पुत्रियों ने मात्र 18 वर्ष एवं 20 वर्ष की उम्र में ही आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेकर सोनगढ़ को ही अपना स्थायी निवास बना लिया।

**विशेष :** भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने। सन् 1959 में खैरागढ़ में जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभ हस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया। सन् 1988 में 25 दिवसीय 70 यात्रियों सहित दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं अनेक सामाजिक कार्यों के अलावा अब व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना में बिताते हैं।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ८ वाँ पुष्प

ॐ

# जैनधर्म की कहानियाँ

## (भाग-5)

:: लेखक ::
ब्र. हरिलाल जैन, सोनगढ़

:: अनुवादक ::
ब्र. विमला बैन, जबलपुर

:: सम्पादक ::
पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

:: प्रकाशक ::
**अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन**
महावीर चौक, खैरागढ़ – ४९१ ८८१ (छत्तीसगढ़)
और
**श्री कहान स्मृति प्रकाशन**
सन्त सान्निध्य, सोनगढ़ – ३६४ २५० (सौराष्ट्र)

| | | |
|---|---|---|
| अबतक | - 20,000 प्रतियाँ | |
| पंचम आवृत्ति | - 2,200 प्रतियाँ (दशलक्षण महापर्व, 2009 के अवसर पर) | |
| कुल | - 22,200 प्रतियाँ | |

**न्यौछावर – दस रुपये मात्र**

*प्राप्ति स्थान –*

1. **अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, शाखा – खैरागढ़**
   श्री खेमराज प्रेमचंद जैन, 'कहान-निकेतन'
   खैरागढ़ – 491881, जि. राजनाँदगाँव (म.प्र.)

2. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
   ए-४, बापूनगर, जयपुर – 302015 (राज.)

3. **ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन**
   'कहान रश्मि', सोनगढ़ - 364250
   जि. भावनगर (सौराष्ट्र)

*टाईप सेटिंग एवं मुद्रण व्यवस्था –*
जैन कम्प्यूटर्स,
श्री टोडरमल स्मारक भवन, मंगलधाम,
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन : 0141-2701056
फैक्स : 0141-2708965
मोबा.: 094147 17816

# प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई। इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य २१००१/- में, संरक्षक शिरोमणि सदस्य ११००१/- में तथा परमसंरक्षक सदस्य ५००१/- में भी बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा।

तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से १८ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार २६ पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं।

जैनधर्म की कहानियाँ भाग ५ के रूप में ब्र. हरिभाई सोनगढ़ द्वारा लिखित हनुमान चरित्र को प्रकाशित किया गया है। जिसकी अबतक २० हजार प्रतियाँ समाज में पहुँच चुकी हैं। इसका हिन्दी अनुवाद ब्र. विमला बेन जबलपुर ने एवं सम्पादन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम इन सभी के आभारी हैं।

आशा है पुराण पुरुषों की कथाओं से पाठकगण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे।

जैन बाल साहित्य अधिक से अधिक संख्या में प्रकाशित हो। ऐसी भावी योजना में शान्तिनाथ पुराण, आदिनाथ पुराण आदि प्रकाशित करने की योजना है।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

**विनीत:**

| | |
|---|---|
| मोतीलाल जैन | प्रेमचन्द जैन |
| **अध्यक्ष** | **साहित्य प्रकाशन प्रमुख** |

## आवश्यक सूचना

पुस्तक प्राप्ति अथवा सहयोग हेतु राशि ड्राफ्ट द्वारा
"अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़" के नाम से भेजें।
हमारा बैंक खाता स्टेट बैंक आफ इण्डिया की खैरागढ़ शाखा में है।

## विनम्र आदराञ्जली

जन्म
1/12/1978
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
2/2/1993
(दुर्ग पंचकल्याणक)

### स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक 3 भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे – ऐसी भावना है।

**हम हैं**

| | | | |
|---|---|---|---|
| दादा | स्व. श्री कंवरलाल जैन | दादी | स्व. मथुराबाई जैन |
| पिता | श्री मोतीलाल जैन | माता | श्रीमती शोभादेवी जैन |
| बुआ | श्रीमती ढेलाबाई | फूफा | स्व. तेजमाल जैन |
| जीजा | श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन | जीजी | सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा |
| जीजा | श्री योगेशकुमार जैन | जीजी | सौ. क्षमा जैन, धमतरी |

## हमारे मार्गदर्शक

**श्री दुलीचंद बरडिया राजनाँदगाँव**

पिता – स्व. फतेलालजी बरडिया

**श्रीमती स्व. सन्तोषबाई बरडिया**

पिता – स्व. सिरेमलजी सिरोहिया

सरल स्वभावी बरडिया दम्पत्ति अपने जीवन में वर्षों से सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों से जुड़े हैं। सन् 1993 में आप लोगों ने 80 साधर्मियों को तीर्थयात्रा कराने का पुण्य अर्जित किया है। इस अवसर पर स्वामी वात्सल्य कराकर और जीवराज खमाकर शेष जीवन धर्मसाधना में बिताने का मन बनाया है।

***विशेष*** – आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी के दर्शन और सत्संग का लाभ लिया है।

### परिवार

| पुत्र | पुत्रवधु | पुत्री | दामाद |
|---|---|---|---|
| ललित | लीला | चन्द्रकला | गौतमचंद बोथरा, |
| स्व. निर्मल | प्रभा | | भिलाई |
| अनिल | मंजु | शशिकला | अरुणकुमार पालावत, |
| सुशील | सुधा | | जयपुर |

# ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

## परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसी कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो व्स्की ह. शीतल विजेन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी-
मीरायाम प्रशांत भायाणी अमेरिका
श्रीमती अर्चना देवी ध.प. श्री सतीशचन्दजी जैन (ठेकेदार)

## शिरोमणि संरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
स्व. धापू देवी ताराचन्द गंगवाल, जयपुर
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़

## परमसंरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई मेहता, बम्बई एवं
श्री प्रकाशभाई मेहता, नेपाल
श्री रमेशभाई, नेपाल एवं श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
सरिता बेन ह. पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, तेजपुर
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई

## संरक्षक सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
स्व. अमराबाई नांदगांव, ह. श्री घेवरचंद डाकलिया
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्री प्रेमचन्द रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
स्व. श्री जेठाभाई हंसराज, सिकंदराबाद
श्री शांतिनाथ सोनाज, अकलूज
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
श्री लवजी बीजपाल गाला, बम्बई
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
श्रीमती शांताबेन श्री शांतिभाई झवेरी, बम्बई
स्व. मूलीबेन समरथलाल जैन, सोनगढ़
श्रीमती सुशीलाबेन उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्री बिशम्भरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
सौ. सविताबेन रसिकभाई शाह, सोनगढ़
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी उज्जैन,
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री चिमनलाल ताराचंद कामदार, जैतपुर
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता

श्रीमती ढेलाबाई चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
श्रीमती तेजबाई देवीलाल मेहता, उदयपुर
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
श्री फूलचंद चौधरी, बम्बई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री लक्ष्मीचंद सुन्दरबाई पहाड़िया, कोटा
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
सौ. चिंताबाई मिट्ठूलाल मोदी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, रायपुर
सौ. सुमन जयकुमार जैन, डोंगरगढ़
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
सौ. कंचनदेवी जुगराज कासलीवाल, कलकत्ता
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
स्व. सुशीलाबेन हिम्मतलाल शाह, भावनगर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री सत्संग महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व. गैंदामल - ज्ञानचन्द - सुमतप्रसाद, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. निधि-निश्चल, खैरागढ़
सौ. सुष्मा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्री अभयकुमार शास्त्री, ह. समता-नम्रता, खैरागढ़
स्व. वसंतबेन मनहरलाल कोठारी, बम्बई
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. गुलाबदेवी लक्ष्मीनारायण रारा, शिवसागर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
स्व. लालचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. ओमलता लालचन्द जैन, भुसावल
श्री योगेन्द्रकुमार लालचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री ज्ञानचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. साधना ज्ञानचन्द जैन लुहाड़िया, भुसावल
श्री देवेन्द्रकुमार ज्ञानचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री महेन्द्रकुमार बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. लीना महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री चिन्तनकुमार महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल जैन, खैरागढ़
अनुभूति-विभूति अतुल जैन, मलाड
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्री प्रशम जीतूभाई मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
श्री पारसमल महेन्द्रकुमार, तेजपुर
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई

## साहित्य प्रकाशन फण्ड

**३०१/- रु. देने वाले –**

श्री सुरेशजी राजनांदगांव

**२५१/- रु. देने वाले –**

श्री खेमराज प्रेमचंद अभयकुमार जैन, खैरागढ़
श्री दुलीचंद कमलेश जिनेश जैन, खैरागढ़
श्री कँवरलाल मोतीलाल जैन, ह. श्री ढेलाबाई, खैरागढ़
झनकारीबाई खेमराज बाफना चैरे. ट्रस्ट, खैरागढ़
ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन, सोनगढ़
पुष्पा बैन भोपाल जैन, दिल्ली
सरोज बेन उम्मेदभाई, सोनगढ़

**२०१/- रु. देने वाले –**

सौ. मनोरमा विनोद कुमार जैन, जयपुर
श्री रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
सौ. क्षमा योगेशकुमार धमतरी
श्रीमती सरोजदेवी डोंगरगढ
मकुलभाई प्रज्ञाबेन शाह, अंबावाडी अहमदाबाद

**१०१/- रु. देने वाले –**

श्री पन्नालाल मनोजकुमार गिड़िया, खैरागढ़
श्री पंन्नालाल उमेशकुमार छाजेड़, खैरागढ़
श्री प्रेमचन्दजी (नरवर), सोनागिर
श्री राजकुमारी, डोंगरगढ
श्री विनित जैन, डोंगरगढ
श्री मनन दीपक भाई अजमेरा, नागपुर

**आत्मा को जाने बिना दुख मिटता नहीं और आत्मा को जानने पर दुख रहता नहीं।**

**जिसे अपने चैतन्यनाथ का भान नहीं एवं जिननाथ के प्रति भक्ति नहीं, वह अनाथ है।** – ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

# अध्यात्म रामायण

राम-रूपी जीवात्मा अपनी अनुभूति-रूपी सीता से बिछुड़ गया। मिथ्यात्व-रूपी रावण उसे हर ले गया। लक्ष्मण-रूपी व्यवहार को साथ लेकर भटकते-भटकते राम की सुग्रीव-रूपी शास्त्रज्ञान से भेंट हुई, परन्तु साहसगति विद्याधर-रूपी मिथ्याज्ञान उसका (अर्थात् सुग्रीव-रूपी शास्त्रज्ञान का) वेश बनाकर उसके घर में बैठा रहा। राम ने मिथ्याज्ञान-रूपी साहसगति का नाश किया और शास्त्रज्ञान-रूपी सुग्रीव का साथ किया। उसने राम को हनुमान-रूपी सम्यग्दर्शन से मिलाया। वह उनकी अनुभूति-त्रिया की खबर लेने गया। राम ने उसे अपनी पहचान के लिये चैतन्य-अस्तित्व-रूपी मुद्रिका दी। हनुमान राम की सीता-रूपी अनुभूति-त्रिया से मिले और मुद्रिका दी। सीता ने बदले में निराकुलता-रूपी चूड़ामणि राम को देने के लिए दी, जिससे उनको विश्वास प्राप्त हो जाय। राम ने सुग्रीव-रूपी शास्त्रज्ञान, हनुमान-रूपी सम्यक्त्व और भामण्डल-रूपी सम्यग्ज्ञान को साथ लेकर, अनन्तानुबन्धी चतुष्क-रूपी समुद्र को पार करके लंका पर चढ़ाई की। तब मिथ्यात्व-रूपी रावण कुंभकर्ण-रूपी असंयम और विषयाभिलाषा-रूपी इन्द्रजीत को साथ लेकर लड़ने को चला। विभीषण-रूपी शुभोपयोग ने बहुत मना किया। जब मिथ्यात्व-रूपी रावण नहीं माना, तब वह उसको छोड़कर राम से आ मिला। अशुद्धोपयोग-रूपी मन्दोदरी ने सीता को बहुत लोभ दिया, पर आत्मानुभूति-रूपी सीता उसका साथ देने को तैयार नहीं हुई। आत्मा-राम ने मिथ्यात्व-रूपी रावण से भारी युद्ध किया। कुंभकर्ण-रूपी असंयम और इन्द्रजीत-रूपी विषयाभिलाषा बंदी हो गये। रावण-रूपी मिथ्यात्व का नाश हुआ और फिर राम, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण तथा भामण्डल के साथ जाकर अपनी अनुभूति-रूपी त्रिया से गले मिलकर सुखसागर में निमग्न हो गये।

**– अध्यात्मयोगी राम से साभार**

॥ श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर देवाय नमः ॥

# तद्भव मोक्षगामी हनुमान की कथा

जैनधर्म के बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत भगवान मोक्ष पधारे, उसके बाद उनके शासन में श्री रामचन्द्र, श्री हनुमान वगैरह अनेक महापुरुष मोक्षगामी हुए; उनमें से श्री हनुमान की यह कथा है।

मोक्षगामी भगवान हनुमान की माता सती अंजना थी। यह अंजना पूर्वभव में एक राजा की पटरानी थी, तब अभिमान से उसने जिनप्रतिमा का अनादर किया था; उस कारण इस भव में अशुभ कर्म के उदय से उस पर कलंक लगा और उसका अनादर हुआ। प्रथम तो उसके पति पवनकुमार उसके ऊपर नाराज हो गये। पीछे सास तथा पिता ने भी उसे कलंकित समझकर घर से निकाल दिया, इस कारण वह सखी के साथ वन-जंगल में रहने लगी, जंगल में मुनिराज के दर्शन कर उसका चित्त धर्म में स्थिर हुआ, अंजना ने जंगल में ही वीर हनुमान को जन्म दिया।

## हनुमान के पूर्वभव

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के मंदिरनगर में प्रियनन्दि नामक एक गृहस्थ था, उसके 'दमयन्त' नामक एक पुत्र था। एकबार वह वसंतऋतु में अपने मित्रों के साथ वन-क्रीड़ा के लिये वन में गया, वहाँ उसने एक मुनिराज को देखा; जिनका आकाश ही वस्त्र था, तप ही धन था और जो निरन्तर ध्यान एवं स्वाध्याय में उद्यमवंत थे – ऐसे परम वीतरागी मुनिराज को देखते ही दमयन्त अपनी मित्र-मण्डली को छोड़कर श्री मुनिराज के समीप पहुँच गया, मुनिराज को नमस्कार कर वह उनसे धर्म-श्रवण करने लगा। मुनिराज के तत्त्वोपदेश से उसने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की और श्रावक के व्रतों एवं अनेक प्रकार के नियमों से सुशोभित होकर घर आया।

तत्पश्चात् एकबार उस कुमार ने दाता के सात गुण सहित मुनिराज

को नवधा-भक्ति पूर्वक आहार दान दिया और अन्त समय में समाधि-मरण पूर्वक देह का परित्याग कर देवगति को प्राप्त हुआ।

स्वर्ग की आयु पूर्ण कर वह जम्बूद्वीप के मृगांकनगर में हरिचन्द्र राजा की प्रियंगुलक्ष्मी रानी के गर्भ से 'सिंहचन्द्र' नामक पुत्र हुआ। वहाँ भी संतों की सेवापूर्वक समाधिमरण ग्रहण कर स्वर्ग गया।

वहाँ से आयु पूर्ण कर भरत क्षेत्र के विजयार्द्ध पर्वत पर अहनपुर नगर में सुकंठ राजा की कनकोदरी रानी के यहाँ सिंहवाहन नामक पुत्र हुआ, जो महागुणवान एवं रूपवान था। उसने बहुत वर्षों तक राज्य भी किया। तत्पश्चात् विमलनाथ स्वामी के समवशरण में आत्मज्ञान पूर्वक संसार से वैराग्य उत्पन्न होने पर सम्पूर्ण राज्य का भार अपने पुत्र लक्ष्मी-वाहन को सौंपकर लक्ष्मी-तिलक मुनिराज के परम शिष्यत्व को अंगीकार कर लिया अर्थात् वीतराग देव कथित मुनिधर्म अंगीकर कर लिया और अनित्यादि द्वादशानुप्रेक्षाओं का चिंतवन करके ज्ञान-चेतनारूप हो गया, उसने महान तप किया और निजस्वभाव में एकाग्रता के बल पर उस स्वभाव में ही स्थिरता की अभिवृद्धि का प्रयत्न करने लगा। तप के प्रभाव से उसे अनेक प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हो गईं, उसके शरीर से स्पर्शित पवन भी जीवों के अनेक रोगों को हर लेती थी। अनेक ऋद्धियों से सम्पन्न वे मुनीश्वर निर्जरा के हेतु बाईस प्रकार के परीषहों को सहन करते थे।

इसप्रकार अपनी आयु पूर्ण कर वे मुनिराज ज्योतिष्चक्र का उल्लंघन कर लांतव नामक सप्तम स्वर्ग में महान ऋद्धि से सुसम्पन्न देव हुये। देवगति में वैक्रियक शरीर होता है, अत: मनवांछित रूप बनाकर इच्छित स्थानों पर गमन सहज ही होता था। साथ ही स्वर्ग का वैभव होने पर भी उस देव को तो मोक्षपद की ही भावना प्रवर्तती थी, अत: वह स्वर्ग सुख में 'जल तें भिन्न कमलवत्' निवास करता था अर्थात् इन्द्रियातीत चैतन्य सुख की आराधना उसने वहाँ चालू रखी थी।

# हनुमान का जन्म

स्वर्ग से निकलकर वह धर्मात्मा जीव अंजना की रत्न-कुक्षी से वन-जंगल में हनुमान के रूप में अवतरित हुआ।

जैसे पूर्व दिशा सूर्य को प्रगट करती है, उसी तरह अंजना ने सूर्यसम तेजस्वी हनुमान को जन्म दिया, उसका जन्म होते ही गुफा में व्याप्त अंधकार विलय हो गया और ऐसा लगता था, मानो वह गुफा ही स्वर्ण निर्मित हो।

यह उनका अंतिम भव था, वे कामदेव होने से अत्यंत रूपवान, महान पराक्रमी, वज्रशरीरधारी और चरम शरीरी थे, उन्होंने इसी भव में भव का अंत करके मोक्ष को प्राप्त किया था।

अंजना पुत्र को छाती से लगाकर दीनतापूर्ण स्वर में कहने लगी–

"हे पुत्र इस गहन वन में तू उत्पन्न हुआ है, अतः मैं तेरा जन्मोत्सव किस प्रकार मनाऊँ ? यदि तेरा जन्म दादा या नाना के यहाँ होता तो निश्चित ही उत्साहपूर्ण वातावरण में तेरा जन्मोत्सव मनाया जाता। अहो! तेरे मुखरूपी चन्द्र को देखकर कौन आनंदित न होगा; किन्तु मैं भाग्यहीन सर्व वस्तुविहीन हूँ, अतः जन्मोत्सव का आयोजन करने में असमर्थ हूँ। हे पुत्र ! अभी तो मैं तुझे यही आशीर्वाद देती हूँ कि तू दीर्घायु हो, कारण कि जीवों को अन्य वस्तुओं की प्राप्ति की अपेक्षा दीर्घायु होना दुर्लभ है।

हे पुत्र ! यदि तू पास है तो मेरे पास सब कुछ है। इस महा गहन वन में भी मैं जीवित हूँ – यह भी तेरा ही पुण्य-प्रताप है।"

इसी बीच आकाश मार्ग से सूर्यसम तेजस्वी एक विमान आता हुआ दिखा, जिसे देख अंजना भयभीत हो शंकाशील हो गयी और जोर-जोर से पुकारने लगी। अंजना की उक्त पुकार सुनकर विमान में विद्यमान विद्याधर को दया उत्पन्न हो गई, अतः उसने अपने विमान को गुफा द्वार के समीप उतार दिया और विनयपूर्वक अपनी स्त्री सहित गुफा में प्रवेश किया।

विद्याधर राजा और कोई नहीं थे, अंजना के ही मामा-मामी थे अर्थात् हनुमत् द्वीप के राजा प्रतिसूर्य ही थे। अनेक दुःख-सुख के वार्तालाप के पश्चात् राजा प्रतिसूर्य ने अपने राज्य प्रस्थान करने की इच्छा प्रगट की, तब अंजना ने राजन् के कथन को स्वीकार कर सर्वप्रथम गुफा में विराजमान भगवान जिनेन्द्र की भावपूर्वक वंदना की, तत्पश्चात् पुत्र को गोद में लेकर प्रतिसूर्य के परिवार के साथ गुफा द्वार से बाहर निकल आई और विमान के समीप पहुँचकर खड़ी हो गई, उसे जाते देखकर मानो सम्पूर्ण वन ही उदास हो गया हो, वन के हिरणादि पशु भी भीगी पलकों से विदा करते हुये टुकुर-टुकुर उसे निहारते थे....गुफा, वन एवं पशुओं पर एक बार स्नेहभरी दृष्टि डालकर अंजना अपनी सखी सहित विमान में बैठ गई। विमान आकाश मार्ग से प्रस्थान करने लगा।

विमान आकाशमार्ग से जा रहा है। अंजना सुन्दरी की गोद में

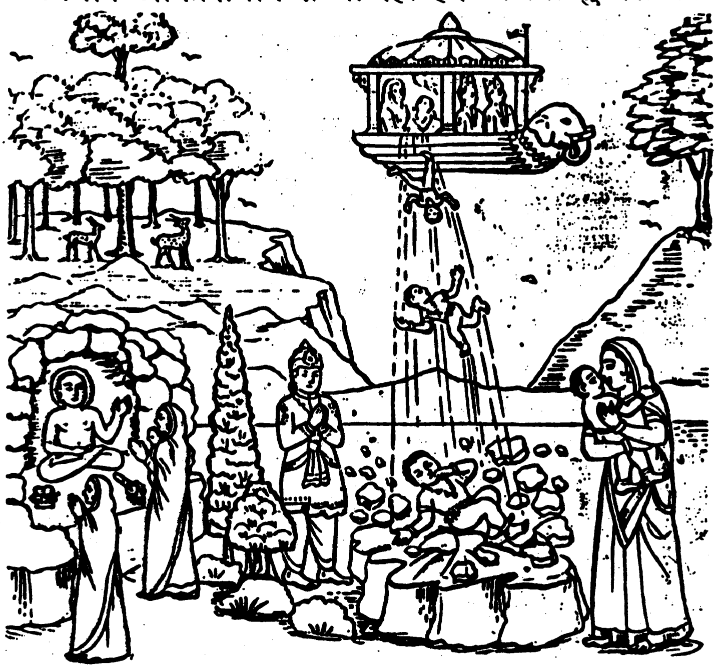

बालक खेल रहा है। सभी विनोद कर रहे हैं कि तभी अचानक....कौतूहल से हँसते-हँसते वह बालक माता की गोद से उछलकर नीचे पर्वत पर जा गिरा। बालक के गिरते ही उसकी माता अंजना हाहाकार करने लगी। राजा प्रतिसूर्य ने भी तत्काल विमान को पृथ्वी पर उतार दिया।

उस समय अंजना के दीनता पूर्वक विलाप के स्वर सुनकर जानवरों के हृदय भी करुणा से द्रवित हो उठे –

"हा पुत्र ! यह क्या हुआ। अरे ! यह भाग्य का खेल भी कितना निराला है, पहले तो मुझे पुत्र रूपी रत्न से मिलाया और पश्चात् मेरे रत्न का ही हरण कर लिया। हा ! कुटुम्ब के वियोग से व्याकुलित मुझ दुखिया का यह पुत्र ही तो एक मात्र सहारा था, यह भी मेरे पूर्वोपार्जित कर्मों ने मुझसे छीन लिया। हाय पुत्र, तेरे बिना अब मैं क्या करूँगी।"

इसप्रकार इधर तो अंजना विलाप कर रही थी और उधर पुत्र हनुमान जिस पत्थर की शिला पर गिरा था, उस पत्थर के हजारों टुकड़े हो गये थे, जिसकी भयंकर आवाज को सुनकर राजा प्रतिसूर्य ने वहाँ जाकर देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"क्या देखा उन्होंने ?"

उन्होंने देखा कि बालक तो एक शिला पर आनंद से लेटा हुआ मुँह में अपना अँगूठा लेकर स्वत: ही क्रीड़ा कर रहा है, मुख पर मुस्कान की रेखा स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है, अकेला पड़ा-पड़ा ही शोभित हो रहा है। अरे ! जो कामदेव पद का धारक हो, उसके शरीर की उपमा किससे दी जावे, उसका शरीर तो सुन्दरता में अनुपम होगा ही।

दूर से ही बालक की ऐसी दशा देखकर राजा प्रतिसूर्य एवं अंजना को अपूर्व आनंद हुआ। अंजना ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसके सिर पर चुंबन अंकित किया और छाती से लगा लिया।

राजा प्रतिसूर्य ने अपनी पत्नी सहित बालक की तीन प्रदक्षिणा की

तथा हाथ जोड़कर सिर झुकाकर नमस्कार किया। तत्पश्चात् पुत्र सहित अंजना को अपने विमान में बैठाकर अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

राजा के शुभागमन के शुभ समाचारों को सुनकर प्रजाजनों ने नगर का श्रृंगार किया और राजा सहित सभी का भव्य स्वागत किया। दशों दिशाओं में वाद्य-वाजित्र के नाद से उन विद्याधरों ने पुत्र-जन्म का भव्य महोत्सव मनाया। जैसा उत्सव स्वर्ग लोक में इन्द्र-जन्म का होता है, उससे किसी तरह यह उत्सव कम नहीं था।

चरम शरीरी जीव हमेशा वज्र संहनन वाले होते हैं, हनुमान भी व्रजशरीरी होने से 'वज्र-अंग' कहलाये। वज्र अंग शब्द से भाषा परिवर्तित होते-होते 'बज्जर-अंग' शब्द हो गया और अंत में 'बजरंग' शब्द हनुमानजी के लिए प्रसिद्ध हो गया।

उसी प्रकार पर्वत में (गुफा में) जन्म हुआ और विमान से गिरने पर पर्वत के शिला को खण्ड-खण्ड कर दिया, अत: उस बालक की माता एवं मामा ने उसका नाम 'शैलकुमार' रखा तथा हनुमत द्वीप में उसका जन्मोत्सव आयोजित होने के कारण जगत में वह 'हनुमान' नाम से विख्यात हुआ।

इस प्रकार शैलकुमार अथवा हनुमानकुमार हनुमत द्वीप में रहते हुए समय व्यतीत करने लगे। देव सदृश प्रभा के धारी उन हनुमानकुमार की चेष्टायें सभी के लिये आनंददायिनी बनी हुई थीं।

## माता अंजना के साथ बालक हनुमान की चर्चा

महान पुण्यवंत और आत्मज्ञानी-धर्मात्मा ऐसा वह बालक 'हनुमत' नाम के द्वीप में आनंद के साथ रह रहा है। अंजना माता अपने लाड़ले बालक को उत्तम संस्कार देती हैं और बालक की महान चेष्टाओं को देखकर आनंदित होती हैं। ऐसे अद्भुत प्रतापवंत बालक को देखकर वे जीवन के सभी दु:खों को भूल गई हैं, तथा आनंद से जिनगुणों में चित्त

को लगाकर भक्ति करती हैं। वनवास के समय गुफा में देखे हुए मुनिराज को बारंबार याद करती हैं।

बालकुंवर हनुमान भी प्रतिदिन माता के साथ ही मंदिर जाता है। देव, शास्त्र, गुरु की पूजन करना सीखता है और मुनिराजों की संगति से आनंदित होता है।

एक बार ८ वर्ष के बालक को लाड़ करती हुई अंजना माँ पूछती हैं – "बेटा हनु ! तुझे क्या अच्छा लगता है ?"

हनुमान कहते हैं – "माँ मुझे तो एक तू अच्छी लगती है और एक (आत्मा) अच्छा लगता है।"

माँ कहती है –

"वाह बेटा ! मुनिराज ने कहा था कि तू चरम शरीरी है, अर्थात् तू तो इस भव में ही मोक्षसुख प्राप्त करके भगवान बनने वाला है।"

कुंवर कहता है – "वाह माता, धन्य वे मुनिराज ! हे माता, मुझे आप जैसी माता मिली, तब फिर मैं दूसरी माता क्यों करूँ ? माँ, आप भी इस भव में अर्जिका बनकर भव का अभाव कर एकाध भव में ही मोक्ष को प्राप्त करना।"

अंजना कहती है – "वाह बेटा ! तेरी बात सत्य है, सम्यक्त्व के प्रताप से अब तो इस संसार-दु:खों का अंत नजदीक आ गया है। बेटा, जबसे तेरा जन्म हुआ है, तबसे दु:ख टल गये हैं और अब ये संसार के समस्त दु:ख भी जरूर ही टल जायेंगे।"

कुंवर कहता है – "हे माता ! संसार में संयोग-वियोग की कैसी विचित्रता है तथा जीवों के प्रीति-अप्रीति के परिणाम भी कैसे चंचल और अस्थिर हैं ! एक क्षण पहले जो वस्तु प्राणों से भी प्यारी लगती है, दूसरे क्षण वही वस्तु ऐसी अप्रिय लगने लगती है कि उसकी तरफ देखना भी नहीं सुहाता तथा कुछ समय बाद वही वस्तु फिर से प्रिय लगने लगती है।

इसप्रकार परवस्तु के प्रति प्रीति-अप्रीति के क्षणभंगुर परिणामों द्वारा जीव आकुल-व्याकुल रहा करता है। एक मात्र चैतन्य का सहज ज्ञान स्वभाव ही स्थिर और शांत है, वह प्रीति-अप्रीति रहित है – ऐसे स्वभाव की आराधना बिना अन्यत्र कहीं सुख नहीं है।"

अंजना कहती है – "वाह बेटा ! तेरी मधुर वाणी सुनने से आनन्द आता है, जिनधर्म के प्रताप से हम भी ऐसी आराधना कर ही रहे हैं। जीवन में बहुत कुछ देख लिया, दु:खमय इस संसार की असारता जान ली। बेटा! अब तो बस, आनंद से एक मोक्ष की ही साधना करना है।"

इसप्रकार हमेशा माँ-बेटा (अंजना और हनुमान) बहुत देर तक आनंद से चर्चा कर एक-दूसरे के धर्म-संस्कारों को पुष्ट करते रहते।

राजपुत्र हनुमान, विद्याधरों के राजा प्रतिसूर्य के यहाँ हनुमत द्वीप में देवों के समान खेलता और आनंदकारी चेष्टाओं द्वारा सभी को आनन्दित करता – ऐसा करते-करते वह नवयौवन दशा को प्राप्त हुआ। कामदेव होने से उसका रूप-लावण्य परिपूर्ण खिल उठा।

भेदज्ञान की वीतरागी विद्या तो उसे प्रगट ही थी, इसके उपरांत आकाशगामिनी आदि अनेक पुण्य-विद्यायें भी उसे सिद्ध हो गईं। वह समस्त जिनशास्त्र के अभ्यास में प्रवीण हो गया। उसे रत्नत्रय धर्म की परम प्रीति थी, वह सदा देव-गुरु-धर्म की उपासना में तत्पर रहता था। अत: युवा बंधुओ! हनुमान का महान आदर्श लक्ष्य में रखकर आप भी उसके समान होने का प्रयत्न करो।

## केवली के दर्शन से हनुमान को महान आनंद

एकबार श्री अनंतवीर्य मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों तथा विद्याधरों का समूह आकाश से मंगल बाजे बजाते हुए केवलज्ञान का महान उत्सव मनाने आया। हनुमान भी आनन्द से उत्सव में गये और भगवान के दर्शन किये। अहा ! दिव्य धर्मसभा के बीच निरालम्ब

विराजमान अनंत चतुष्टयवंत अरहंतदेव को देखते ही हनुमान को कोई आश्चर्यकारी प्रसन्नता हुई। उसने इस जीवन में प्रथम बार ही वीतराग देव को साक्षात् देखा था। जिसप्रकार सम्यग्दर्शन के समय प्रथम बार अपूर्व आत्मदर्शन होते ही भव्यजीवों के आत्मप्रदेश परम-आनन्द से खिल उठते हैं, उसी प्रकार हनुमान का हृदय भी प्रभु को देखते ही आनन्द से खिल उठा।

अहा, प्रभु की सौम्य मुद्रा ! पर कैसी परम शांति और वीतरागता छा रही है – यह देख-देखकर हनुमान का रोम-रोम हर्ष से उल्लसित हो गया। वह प्रभु की सर्वज्ञता में से झरता हुआ अतीन्द्रिय आनन्द रस, श्रद्धा के प्याले में भर-भर कर पीने लगा। परम भक्ति से उसकी हृदय-वीणा झनझना उठी।

**अत्यंत आत्मोत्पन्न विषयातीत अनूप अनंत जो।**
**विच्छेदहीन है सुख अहो ! शुद्धोपयोग प्रसिद्ध का ।।**

(प्रवचनसार गाथा ५० का हिन्दी पद्यानुवाद)

अहो प्रभो ! आप अनुपम अतीन्द्रिय आत्मा के सुख को शुद्धोपयोग के प्रसाद से अनुभव कर रहे हो ! हमारा भी यही मनोरथ है कि ऐसा उत्कृष्ट अनुपम सुख हमें भी अनुभव में आवे।

ऐसी प्रसन्नता पूर्वक स्तुति करके हनुमान केवली प्रभु की सभा में मनुष्यों के कोठे में जाकर बैठे। महाराजा रावण, इन्द्रजीत, कुंभकरण, विभीषण वगैरह भी प्रभु के केवलज्ञान-उत्सव में आये तथा भक्ति भाव से प्रभु की वंदना करके धर्मसभा में बैठे। प्रभु का उपदेश सुनने के लिए सभी आतुर हैं कि अब वहाँ चारों ओर आनंद फैलाती हुई दिव्यध्वनि छूटी; भव्यजीव हर्ष-विभोर हो गये। जैसे तीव्र गर्मी में मेघवर्षा होते ही जीवों को शांति हो जाती है, वैसे ही संसार क्लेश से संतप्त जीवों का चित्त दिव्यध्वनि की वर्षा से अत्यंत शांत हो गया।

दिव्यध्वनि में प्रभु ने कहा – "अहो जीवो ! संसार की चारों गतियों के शुभाशुभभाव दुःख रूप हैं; आत्मा की मोक्षदशा ही परम सुख रूप है – ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा उसकी साधना करो। वे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों राग रहित हैं और आनन्दरूप हैं।" यहाँ भव्यजीव एकदम शांतचित्त से भगवान का उपदेश सुन रहे हैं।

भगवान की दिव्यध्वनि में आया– "आत्मा के चैतन्यसुख के अनुभव बिना अज्ञानी जीव पुण्य-पाप में मूर्छित हो रहा है और बाह्य वैभव की तृष्णा की दाह से दुःखी हो रहा है। अरे जीवो ! विषयों की लालसा छोड़कर तुम अपनी आत्मशक्ति को जानो, विषयातीत चैतन्य का महान सुख तुम्हारे में ही भरा है।

आत्मा को भूलकर जीव विषयों के वशीभूत होकर महानिंद्य पापकर्मों के फलस्वरूप नरकादि गतियों के महादुःख को भोगते हैं। अरे, महादुर्लभ मनुष्यपना पाकर के भी तू आत्महित को नहीं जानता तथा तीव्र हिंसा-झूठ-चोरी आदि पाप करके नरक में जाता है। माँस-मच्छी-अंडा-शराब आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करनेवाला जीव नरक में जाता है, वहाँ उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं – ऐसे महादुःखों से आत्मा को छुड़ाने के लिए, हे जीवो ! तुम अपने आत्मा को पहिचान कर, श्रद्धा कर एवं अनुभव करके शुद्धोपयोग प्रगट करो, शुद्धोपयोग रूप आत्मिक धर्म का फल ही मोक्ष है।

जीव कभी पुण्य करके देवगति में उपजा, वहाँ भी अज्ञान से बाह्य वैभव में ही मूर्छित रहा, उसने आत्मा के सच्चे सुख को जाना नहीं। अरे, अभी यह महादुर्लभ अवसर धर्म सेवन करने के लिए मिला है; इसलिए हे जीव ! तू अपना हित कर ले, ये संसार सागर में खोया हुआ मनुष्य-रत्न फिर हाथ आना बड़ा दुर्लभ है। इसलिए जैन-सिद्धांत के अनुसार तत्त्वज्ञान पूर्वक मुनिधर्म या श्रावकधर्म का पालन करके आत्मा का हित करो।"

इसप्रकार श्री अनंतवीर्य केवली प्रभु के श्रीमुख से हनुमान एकाग्रचित से उपदेश सुनकर परम वैराग्य में तन्मय हो गये। राजा रावण आदि भी भक्ति से उपदेश सुन रहे हैं – ऐसा सुन्दर वीतरागी धर्म का उपदेश सुनकर देव, मनुष्य और तिर्यञ्च – सभी आनंदित हुए; कितने ही जीवों ने साक्षात मोक्षामार्गरूप मुनिपद धारण किया। कितनों ने श्रावकव्रत अंगीकार कर लिये, कितने ही जीव कल्याणकारी अपूर्व सम्यक्त्व धर्म को प्राप्त हुए।

हनुमान, विभीषण आदि ने भी उत्तम भाव से श्रावकव्रत धारण किये। हनुमान की तो यद्यपि मुनि होने की भावना थी, परन्तु माता अंजना के प्रति परम स्नेह के कारण वह मुनि नहीं बन सके। अरे, संसार का स्नेह-बंधन तो ऐसा ही है।

भगवान के उपदेश से बहुत से जीवों में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र खिल उठता है। जैसे वर्षा होने से बगीचा खिल जाता है, वैसे ही जिनवाणी की अमृतवर्षा से धर्मात्मा जीवों का आनन्द बगीचा श्रावकधर्म तथा मुनिधर्म रूप फूलों से खिल उठता है।

इसी प्रसंग पर एक मुनिराज ने रावण से कहा –

"हे भद्र ! तुम भी कुछ नियम ले लो। भगवान का यह समवशरण तो धर्म का रत्नद्वीप समान है; इस रत्नद्वीप में आकर तुम भी कुछ नियमरूपी रत्न ले लो, महापुरुषों के लिए त्याग कोई खेद का कारण नहीं।"

यह सुनकर जैसे रत्नद्वीप में प्रवेश करने वाले किसी मनुष्य का मन घूमने लगता है कि "मैं कौनसा रत्न लेऊँ ? ये लेऊँ कि ये लेऊँ ?" वैसे ही राजा रावण का चित्त घूमने लगा – "मैं कौनसा नियम लेऊँ ?"

भोगों में अत्यंत आसक्त ऐसे रावण को मन में चिंता होने लगी –

"मेरा खान-पान तो सहज ही पवित्र है, माँसादि मलिन वस्तुओं

से रहित ही मेरा आहार है; परंतु मतवाले हाथी के जैसा भोगासक्त मेरा मन महाव्रत का भार उठाने में तो समर्थ नहीं। अरे, महाव्रत की तो क्या बात ? परन्तु श्रावक का एक भी अणुव्रत धारण करने की मेरी शक्ति नहीं। अरे रे ! मैं महा शूरवीर होने पर भी तप-व्रत धारण करने में असमर्थ हूँ। अहो वे महापुरुष धन्य हैं कि जिन्होंने महाव्रत अंगीकार किये हैं। वे श्रावक भी धन्य हैं कि जो अणुव्रतों को पालते हैं। मैं महाव्रत या अणुव्रत तो नहीं ले सकता तो भी एक छोटा सा नियम तो जरूर लेऊँ।"

—ऐसा विचार कर राजा रावण ने भगवान को प्रणाम करके कहा—

"हे देव ! मैं ऐसा नियम लेता हूँ कि जो पर-नारी मुझे चाहती न हो, उसे मैं नहीं भोगूँगा। पर-स्त्री चाहे कितनी ही रूपवान क्यों न हो तो भी मैं बलात्कार करके उसका सेवन नहीं करूँगा।"

इसप्रकार अनंतवीर्य केवली के समक्ष रावण ने प्रतिज्ञा की। उसके मन में ऐसा था कि जगत में ऐसी कौनसी स्त्री है कि जो मुझे देखकर मोहित न हो जाय ? अथवा ऐसी वह कौन परस्त्री है, जो विवेकी-पुरुष के मन को डिगा सके ?

रावण के भाई कुंभकरण ने भी इस प्रसंग पर प्रतिज्ञा ली — कि "प्रतिदिन सुबह से उठकर मैं जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक-पूजन करूँगा; तथा आहार के समय मुनिराज पधारें तो उनको आहारदान देकर पीछे मैं भोजन करूँगा। मुनि के आहार के समय से पहले मैं आहार नहीं करूँगा।"

इसप्रकार धर्मात्मा कुंभकरण (जो चरमशरीरी हैं तथा बड़वानी-चूलगिरि सिद्धक्षेत्र से मोक्ष गये हैं) ने नियम लिया। दूसरे कितने ही जीवों ने भी अपनी-अपनी शक्ति अनुसार अनेक प्रकार के व्रत-नियम लिये।

इसप्रकार केवली प्रभु की सभा में आनन्द से धर्म श्रवण करके तथा व्रत-नियम अंगीकार करके सभी अपने-अपने स्थान पर चले गये।

हनुमान को तो आज हर्ष का पार न था। आज तो उन्होंने साक्षात् भगवान को देखा था, उनके हर्ष की क्या बात करनी ! घर आते ही अपने महान हर्ष की बात उनने अपनी माता से कही –

"अहो माँ ! आज तो मैंने अरहंत परमात्मा को साक्षात् देखा है। अहो, कैसा अद्भुत उनका रूप ! कैसी अद्भुत उनकी शांत मुद्रा ! और कैसा आनन्दकारी उनका उपदेश ! माँ आज तो मेरा जीवन धन्य हो गया।"

माँ बोली – "वाह बेटा ! अरिहंत देव के साक्षात् दर्शन होना तो वास्तव में महाभाग्य की बात है, तथा उनके स्वरूप को जो पहिचाने, उसे तो भेदज्ञान प्रगट हो जाता है।"

हनुमान कहते हैं – "वाह माता ! आप की बात सत्य है। अरिहंत परमात्मा तो सर्वज्ञ हैं, वीतराग हैं; उनके द्रव्य में, गुण में, पर्याय में सर्वत्र चैतन्य भाव ही है, उनमें राग का तो कोई अंश भी नहीं है अर्थात् उनको पहिचानते ही आत्मा का राग रहित सर्वज्ञ-स्वभाव पहिचान में आ जाता है – ऐसी पहिचान का नाम ही सम्यग्दर्शन है।

कहा भी है –

**जो जानता अरिहन्त को, चेतनमयी शुद्धभाव से।**
**वह जानता निज आत्मा, समकित ग्रहे आनन्द से॥**

हे माता, अनुभवगम्य हुई इस बात को श्री प्रभु की वाणी में सुनते ही कोई महान प्रसन्नता होती है।"

माता अंजना भी पुत्र का हर्ष देखकर आनन्दित हुई और बोली–

वाह बेटा ! सर्वज्ञ भगवान के प्रति तेरी परिणति ऐसा बहुमान का भाव देखकर मुझे बहुत आनन्द होता है। भगवान की वाणी में तूने और क्या सुना, वह तो कह ?

हनुमान ने अत्यंत उल्लास से कहा – "अहो माता ! आत्मा का अद्‌भुत आनन्दमय स्वरूप भगवान बताते थे। वीतराग रस से भरे चैतन्यतत्त्व की कोई गंभीर महिमा भगवान बतलाते थे, उसे सुनते ही भव्यजीव शांतरस के समुद्र में सराबोर हो जाते थे। माता, वहाँ तो बहुत से मुनिराज थे, वे तो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते थे। अहो, ऐसे आनन्द में झूलते मुनिवरों को देखकर मुझे उनके साथ रहने का मन हुआ, परन्तु....(इतना कहकर हनुमान रुक गए)"

अंजना ने पूछा – "क्यों बेटा हनुमान ! तू बोलते-बोलते रुक क्यों गया ?"

"क्या कहती हो माँ ! मुझे मुनिदशा की बहुत भावना हुई, परन्तु हे माता मैं तेरे स्नेह-बंधन को तोड़ नहीं सका; तुम्हारे प्रति परम प्रेम के कारण मैं मुनि नहीं हो सका। माता, सारे संसार का मोह मैं एक क्षण में छोड़ने को समर्थ हूँ, परन्तु तेरे प्रति उत्पन्न मोह नहीं छूटता है, इसलिए महाव्रत के बदले मैंने मात्र अणुव्रत ही धारण किये।"

"अहो पुत्र ! तू अणुव्रतधारी श्रावक हो गया – ये महा आनन्द की बात है। तेरी उत्तम भावनाओं को देखकर मुझे हर्ष होता है। मैं ऐसे महान धर्मात्मा और चरमशरीरी मोक्षगामी पुत्र की माता हूँ – इसका मुझे गौरव है। अरे, वन में जन्मा हुआ मेरा ये पुत्र अंत में तो वनवासी ही होगा और आत्मा की परमात्मदशा को साधेगा।"

माता-पुत्र बहुत बार ऐसी आनन्दपूर्वक धर्मचर्चा करते थे। ऐसे धर्मात्मा जीवों को अपने आंगन में देखकर राजा प्रतिसूर्य (अंजना के मामा) भी खुश होते थे.... कि वाह ! ऐसे धर्मी जीवों की सेवा का अनायास ही लाभ मिला – यह हमारा धन्य भाग्य है ! यथासमय युद्ध समाप्त होने पर श्री पवनजय भी यहाँ आकर राजा प्रतिसूर्य का आतिथ्य एवं अंजना और पुत्र हनुमान को पाकर आनन्दित हो रहे थे।

# रणशूर हनुमान....रावण की मदद में

प्रतिसूर्य राजा का राजदरबार भरा हुआ है। श्री पवनकुमार, हनुमान आदि भी राजसभा में शोभायमान हो रहे हैं, तेजस्वी हनुमान को देखकर सभी मुग्ध हो रहे हैं, इतने में रावण के एक राजदूत ने राजसभा में प्रवेश किया और प्रतिसूर्य राजा से रावण का संदेश देते हुए कहने लगा –

"हे महाराज ! मैं लंकाधिपति रावण महाराज का संदेश लेकर आया हूँ; पहले जिस वरुण राजा को पवनकुमार ने जीत लिया था, वह वरुण राजा अब फिर से महाराजा रावण की आज्ञा के विरुद्ध आचरण कर रहा है; इसीलिए उसके साथ युद्ध में मदद करने के लिए आपको तथा पवनकुमार को महाराजा रावण ने पुनः आमंत्रित किया है।"

रावण की आज्ञा शिरोधार्य करके राजा प्रतिसूर्य तथा पवनकुमार युद्ध में जाने की तैयारी करने लगे और हनुमत द्वीप का राज्यभार हनुमान को सौंपने का विचार कर उसके राज्याभिषेक की तैयारी करने लगे। यह देखकर वीर हनुमान ने कहा –

"पिताजी ! आप दोनों वृद्ध (बुजुर्ग) हो, मेरे होते हुए आपका युद्ध में जाना उचित नहीं। मैं ही युद्ध में जाऊँगा और वरुण राजा को जीत कर आऊँगा।"

यह सुनकर पवनकुमार बोले –

"बेटा हनुमान ! तुम शूरवीर हो, ये सत्य है; परंतु अभी तुम बालक हो, तुम्हारी उम्र छोटी है, तुमने रणभूमि कभी देखी नहीं, दुश्मन राजा बड़ा बलवान है, उसके पास बड़ी सेना है, तथा उसका किला बहुत मजबूत है; इसलिए तू युद्ध में जाने का आग्रह छोड़ दे, हम ही जायेंगे।"

तब हनुमान कहते हैं – "भले मैं छोटा हूँ, परन्तु शूरवीर हूँ; रणक्षेत्र पहले कभी नहीं देखा – इससे क्या ? ऐसे तो हे पिताजी ! चारों

गतियों में अनादिकाल से भ्रमण करते हुए जीवों ने मोक्षगति कभी नहीं देखी, फिर भी उस अभूतपूर्व ऐसे मोक्षपद को क्या मुमुक्षुजीव आत्म-उद्यम द्वारा नहीं साधते ? पहले कभी नहीं देखी हुई मोक्षपदवी को भी मुमुक्षुजीव पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त कर ही लेते हैं – इसी प्रकार पहले कभी नहीं देखे हुए, आत्मतत्त्व को अपूर्व सम्यग्ज्ञान द्वारा भव्य जीव देख ही लेते हैं; तो फिर पहले नहीं देखा – ऐसे रणक्षेत्र में जाकर शत्रु को जीत लेना कौनसी बड़ी बात है ? इसीलिए हे पिताजी ! मुझे ही युद्ध में जाने दो, मैं वरुण राजा को जीत लूँगा। जिसप्रकार शेर का बच्चा बड़े हाथी के सामने जाने से नहीं डरता, उसी प्रकार मैं भी निर्भय होकर वरुण राजा के सामने जाने से नहीं डरता, अवश्य ही मैं उसे जीत लूँगा।''

हनुमान की वीरताभरी बातें सुनकर सभी प्रसन्न हुए। वाह, देखो मोक्षगामी जीव की भणकार ! युद्ध की बात से भी उसने मोक्ष का दृष्टांत प्रस्तुत किया है। यद्यपि अनादि अज्ञानदशा में जीव ने कभी आत्मा को जाना नहीं था, न सिद्धपद का स्वाद ही चखा था, फिर भी जब वह मुमुक्षु हुआ और मोक्ष को साधने तैयार हुआ; तब आत्मस्वभाव में से ही सम्यग्ज्ञान प्रगट करता हुआ, चैतन्य की स्वाभाविक वीरता द्वारा आत्मा को जान लेता है और अनादि के मोह को जीतकर सिद्धपद को साध लेता है। लोक में कहावत है कि – 'रणे चढ़ो राजपूत छिपे नहीं'

इसप्रकार हनुमान का अति आग्रह देखकर उसे कोई रोक नहीं सका, अन्त में सभी ने उसे युद्ध में जाने की आज्ञा दे दी।

प्रसन्नचित्त से विदाई लेकर हनुमानजी जिन-मंदिर में गये; वहाँ बहुत ही शांतचित्त से अष्ट मंगल द्रव्यों द्वारा अरहंत देव की पूजा की, सिद्धों का ध्यान किया और भावना भायी –

''अहो भगवंतो ! आप समान मैं भी मोहशत्रु को जीतकर आनन्दमय मोक्षपद को कब साधूँगा।''

इसप्रकार पंच परमेष्ठी भगवन्तों की पूजन करने के बाद हनुमान ने माता के पास जाकर विदाई माँगी –

"हे माँ ! मैं युद्ध में जीतने जा रहा हूँ, तुम मुझे आशीर्वाद दो।"

माता अंजना तो आश्चर्य में पड़ गई – ऐसे शूरवीर पुत्र को देखकर उसके हृदय में स्नेह उमड़ आया... पुत्र को युद्ध के लिए विदाई देते समय उसकी आँखों में आँसू भर आये; परंतु पुत्र की शूरवीरता का उसे विश्वास था, इसलिए आशीर्वाद पूर्वक विदाई दी –

"बेटा ! जा, जिसप्रकार वीतरागी मुनिराज शुद्धोपयोग द्वारा मोह को जीत लेते हैं, उसीप्रकार तू भी शत्रु को जीतकर जल्दी वापिस आना।"

माता के चरणों में नमस्कार करके हनुमान ने विदाई लेकर, लश्कर सहित लंका नगरी की तरफ प्रस्थान किया। रास्ते में अनेक शुभ शगुन हुये।

जब वीर हनुमान रावण के पास जा पहुँचे; तब दिव्यरूपधारी हनुमान को देखते ही राक्षसवंशी-विद्याधर राजागण विस्मित होकर बातें करने लगे –

"ये हनुमानजी महान भव्योत्तम हैं, इन्होंने बाल्यावस्था में ही पर्वत की शिला चूर-चूर कर डाली थी, ये तो वज्र-अंगी हैं। महाराजा रावण ने भी प्रसन्नता से उसका सन्मान किया तथा स्नेहपूर्वक हृदय से लगाकर उसे अपने पास बैठाया; उसका रूप देकर हर्षित हुए और कहा कि पहले इनके पिताजी पवनकुमार ने हमारी मदद की थी और अब ऐसे वीर तथा गुणवान हनुमान को भेजकर हमारे ऊपर बहुत ही स्नेह प्रदर्शित किया है। इसके समान बलवान योद्धा दूसरा कोई नहीं, इसलिए अब रण-संग्राम में वरुण राजा से हमारी जीत निश्चित है।"

(यद्यपि रावण के पास दैवी आयुध होने से उनके द्वारा वह वरुण राजा को आसानी से जीत सकता था, परंतु उसने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि वरुण राजा को दैवी शस्त्रों के बिना ही जीतना है।)

अब पुन: रावण ने वरुण राजा के साथ संग्राम शुरू किया। वरुण राजा की पुंडरीक नगरी लवण समुद्र के बीच में थी; हनुमान ने समुद्र को लांघकर उसमें प्रवेश किया। भयानक लड़ाई शुरू हुई। वरुण के पुत्रों ने रावण को चारों ओर से घेर लिया। एक बार विद्या के बल से कैलाश पर्वत को भी हिला देने वाला राजा रावण शत्रुओं से घिर गया – यह देखकर हनुमान तुरन्त ही वहाँ दौड़कर आये और उन राजपुत्रों पर झपट पड़े। जैसे हवा के थपेडों से पत्ते काँपने लगते हैं, वैसे ही पवनपुत्र के हमले से शत्रुओं के हृदय काँप उठे। जैसे जिनमार्ग के अनेकांत के सामने एकांत रूप मिथ्यामत टिक नहीं सकते, वैसे ही हनुमानजी के सामने वरुण की सेना टिक नहीं सकी। हनुमान ने विद्या के बल से वरुण के सौ के सौ पुत्रों को पकड़ कर बाँध लिया। दूसरी ओर रावण ने भी वरुण राजा को पकड़ कर बंदी बना लिया।

इस तरह रावण की जीत होते ही उसके लश्कर ने वरुण राजा की पुंडरीक नगरी में प्रवेश किया तथा लश्कर के सैनिक उस नगरी को लूटने का विचार करने लगे, परन्तु नीतिवान राजा रावण ने उनको रोकते हुए कहा –

"प्रजा को लूटना – ये राजा का धर्म नहीं है; अपना वैर तो राजा वरुण के साथ था, प्रजा के साथ नहीं; प्रजा का क्या अपराध ? प्रजा को लूटना बड़ा अन्याय है – ऐसा दुराचार अपने को शोभा नहीं देता, इसलिए प्रजा की रक्षा कर उसे निर्भय बनाओ तथा वरुण राजा को छोड़कर उसका राज्य उसे सौंप दो" ....रावण का ऐसा उदार व्यवहार देखकर सभी उसकी प्रशंसा करने लगे।

लड़ाई के ठीक मौके पर आकर हनुमानजी ने रावण की रक्षा की, इससे रावण उसके ऊपर बड़ा खुश हुआ अतः उसने अपनी भानजी (खरदूषण की पुत्री) अनंगकुसुमा के साथ विवाह कर उसे कर्णकुंडलपुर नगरी का राज्य उसको दिया।

जैसे भरत चक्रवर्ती के भाई बाहुबली प्रथम कामदेव थे, वैसे ही बजरंगबली हनुमान भी आठवें कामदेव थे, उनका रूप बेजोड़ था; पवनकुमार नाम के विद्याधर राजा और अंजना सती के वे पुत्र थे; उस राजपुत्र की ध्वजा में कपि (बंदर) का निशान था।

जैसे बाहुबली कामदेव होने से अद्भुत रूपवान थे; अनेक रानियाँ, पुत्र-पुत्रियाँ, राज परिवार वगैरह विशिष्ट पुण्य वैभव था; वैसे ही हनुमान कामदेव थे, उनका भी विशिष्ट पुण्य वैभव था। बाहुबली तथा हनुमान दोनों कामदेव होने पर भी निष्काम आत्मा को जाननेवाले थे, चरमशरीरी थे, आत्मा के ब्रह्मस्वरूप के ज्ञानपूर्वक अन्त में राजपाट, रानियाँ आदि सभी को छोड़कर, परमब्रह्मस्वरूप निजात्मा में लीनता द्वारा मोक्षपद को प्राप्त हुये।

वरुण से युद्ध करके वापिस आते समय वह पर्वत भी बीच में आया तथा वह वन और वह गुफा भी आई कि जिसमें वनवास के समय अंजना रहती थी, हनुमान उसे देखने के लिए नीचे उतरे और माता के वनवास के समय का निवासस्थान देखकर उन्हें बहुत वैराग्य जागृत हुआ। अहा, यहीं इसी वन में और इसी गुफा में मेरी माता रहती थी।

इस गुफा में विराजमान

मुनिराज ने मेरी माता को धर्मोपदेश दिया था, तथा पूर्वभव भी कहे थे। अहा, यहीं मुनिसुव्रतनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान है। मेरी माँ उनके दर्शन-पूजन करते ही सभी दुःख भूल जाती थी, यहाँ इसी गुफा में मेरा जन्म हुआ था। इसप्रकार विचार कर अपने जन्मधाम (गुफा) में बैठकर हनुमान चैतन्य का ध्यान करने लगे।

अहो, कुछ समय पहले लड़ाई और कुछ समय बाद ही निर्विकल्प शांति का ध्यान ! वाह ! साधक धर्मात्मा की परिणति कैसी विचित्र है !! कैसी अद्भुतता भरी है उसके चैतन्यभाव में !!! अन्य भावों के समय वह उससे न्यारा ही न्यारा वर्तता है। वाह साधक ! धन्य है आपका जीवन ! आपका जीवन अन्य जीवों को भी भेदज्ञान और आराधना का ही बोध दे रहा है।

अहो जीवो ! हनुमान जैसे धर्मसाधक जीवों के जीवन में उदयभाव के अनेक प्रसंगों को देखते हुए भी उनकी उदयातीत चैतन्यदशा को भूलना मत। औदयिक भावों से जो भिन्न है, औदयिक भाव से भी जो अधिक बलवान है – ऐसे सम्यक्त्वादि चैतन्यभावों से सुशोभित साधक जीवों के जीवन को पहचान कर उनका सन्मान करना। अकेले औदयिकभावों को ही देखने मत लग जाना।

मार्ग में किष्किंधापुर नगरी आई, वहाँ का विद्याधर राजा सुग्रीव बड़ा ही पराक्रमी था, उसकी पुत्री पद्मरागा हनुमान पर मोहित हो गई। हनुमान का चित्त भी उसका चित्र देखकर आसक्त हो गया। इस कारण दोनों की शादी हुई। उसके बाद हनुमान हनुमत द्वीप पहुँचे – ऐसे शूरवीर प्रतापवंत एवं धर्मात्मा पुत्र को देखते ही माता अंजना तथा पिता पवनकुमार आदि सभी बहुत प्रसन्न हुए तथा विजयोत्सव मनाया।

(लंकानगरी का महाराजा रावण, हजारों राजा जिसकी सेवा करते हैं, १८,००० जिसकी रानियाँ हैं, भरत क्षेत्र के विजयार्द्ध पर्वत की

दक्षिण दिशा के तीन खंडों का जो अधिपति है, जिसके यहाँ दैवी सुदर्शन चक्र प्रगट हुआ, सभी राजाओं ने मिलकर अर्द्धचक्रवर्ती के रूप में जिसका राज्याभिषेक किया; वह राजा रावण मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के शासनकाल में आठवाँ प्रतिवासुदेव हुआ था; राक्षसवंशी विद्याधर राजाओं के कुल का वह तिलक था, वह माँसाहारी नहीं था, वह तो शुद्ध भोजन करने वाला जिनभक्त था। उसकी लंकानगरी की शोभा अद्भुत थी तथा वहाँ के राजमंदिर में शांतिनाथ भगवान का अति मनोहर एक जिनालय था; वहाँ जाकर रावण जिनेन्द्र भक्ति करता और विद्या भी साधता था। लंका प्रवेश के बाद रामचन्द्रजी ने भी उस जिनमंदिर में शांतिनाथ भगवान की अद्भुत भक्ति की थी। हनुमान भी कोई बंदर नहीं थे, परन्तु आठवें कामदेव थे तथा चरमशरीरी महात्मा थे। शास्त्रकार कहते हैं –

"अहो भव्यजीवो ! तुम जिनशास्त्र के अनुसार भगवान रामचंद्र, भगवान हनुमान, इन्द्रजीत, कुंभकरण वगैरह के वीतरागी स्वरूप को पहिचानो, जिससे तुम्हें उन मोक्षगामी महान सत्पुरुषों के अवर्णनाद का दोष न लगे तथा रत्नत्रयमार्ग का उत्साह जागृत हो। जिन-शास्त्र तो रत्नों के भंडार हैं। इन जिन-शास्त्रों के अनुसार वस्तु के सत्य स्वरूप को जानते ही मिथ्यावादी पाप धुल जाते हैं, और अपूर्व हितकारी भाव प्रगट होते हैं।")

(बंधुओ, अपनी इस कथा का सम्बन्ध हनुमान के जीवन-चरित्र से सम्बन्धित हैं। हनुमान राजा रावण को लड़ाई में मदद देकर वापिस हनुरुह द्वीप आये। आगे के प्रकरण में हनुमान सीता को खोजने में रामचन्द्रजी की मदद करेंगे। इतना ही नहीं, रावण के साथ हुए युद्ध में लक्ष्मण को बचाने में भी हनुमान बहुत मदद करेंगे, परन्तु उसके पहले अपने को रामचन्द्र और सीता सम्बन्धी थोड़ा इतिहास जान लेना भी जरूरी है। अभी तो हनुमान अपनी माता अंजना के पास वरुण के साथ युद्ध की वार्ता और बीच वन में आये अपने जन्मधाम की वार्ता करने में

मशगूल हैं। पाठको! जबतक वे माँ-बेटे खूब मन भरकर बातें करते हैं, तबतक उतने समय हम तुम्हें अयोध्या ले चलते हैं।)

## हनुमान कथा के अन्तर्गत प्रकरण प्राप्त रामकथा

अपने इस भरतक्षेत्र की अयोध्यानगरी में, इक्ष्वाकुवंश में भगवान ऋषभदेव से लेकर मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर पर्यंत के काल में असंख्यात राजा मोक्षगामी हुए हैं, उसी क्रम में रघु राजा हुए हैं। उन रघु राजा के पौत्र दशरथ अयोध्या के राजा बने। राजा दशरथ सम्यग्दर्शन से सुशोभित थे, उन्होंने भरत चक्रवर्ती द्वारा बनवाये हुए अद्भुत जिनालयों का जीर्णोद्धार कराके उन्हें पुनः नवीन जैसे करा दिये थे। दशरथ राजा की कौशल्या, सुमित्रा, केकई और सुप्रभा – ये चार रानियाँ थीं। उनमें से केकई ने स्वयंवर के समय राजाओं के साथ युद्ध में दशरथ की मदद की थी – इस कारण राजा दशरथ ने प्रसन्न होकर उसे एक वरदान माँगने को कहा था और उसे रानी केकई ने बाकी रखा था।

(पाठकगण ! ये केकई जैनधर्म की जानकार, सम्यग्दर्शन की धारी और व्रतों का पालन करनेवाली थी, शास्त्रविद्या और शस्त्रविद्या दोनों में निपुण थी; वह दुष्ट या दुर्गुणी नहीं थी, परन्तु वह तो सज्जन-धर्मात्मा-श्राविका थी। वचन बाकी रखने में उसका कोई दुष्ट हेतु नहीं था, उसका उसे विवेक था कि बिना प्रयोजन के क्या माँगे।

अरे रे, जगत धर्मात्मा को पहचान नहीं सकते, अपने राग-द्वेष के अनुसार धर्मात्मा में भी मिथ्या दोषारोपण करके विपरीत रूप में देखते हैं। धर्मात्मा के सच्चे गुणों को और महान चरित्र को पहचानें तो जीव का कल्याण हो जाये। जैनधर्म के पुराण धर्मात्मा के गुणों की सच्ची पहचान कराते हैं कि कैसे-कैसे गंभीर प्रसंगों में भी धर्मात्मा अपने उत्तम गुणों की आराधना टिकाये रखते हैं – यह बतलाकर जीवों को आराधना का उत्साह जगाते हैं; इसलिए जैन पुराणों का पठन-श्रवण मुमुक्षु जीवों को उपयोगी जानकर करना चाहिये।)

दशरथ राजा और चार रानियों द्वारा अनुक्रम से राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न – ये चार पुत्र हुए। राम का असली नाम 'पद्म' था, इसलिए उनकी कथा पद्मपुराण अथवा पद्मचरित्र कहलाती है।

अष्टाह्निका पर्व आया....और दशरथ राजा ने आठ दिन के उपवास पूर्वक जिनदेव की महापूजा की। पूरी अयोध्या नगरी वीतरागी पूजन के महान हर्ष से खिल उठी। इतने में ही सरयू नदी के किनारे अनेक मुनिवरों का संघ आया। पर्वत पर, गुफा में, वन में, नदी किनारे मुनिजन ध्यान एवं स्वाध्याय में लीन थे। अहो, धर्मकाल ! अनेक मुनिराज तो विशेष लब्धिवान और अवधि-मनःपर्यय ज्ञानी थे। राजा दशरथ उन सब मुनिवरों के दर्शन करके उनका उपदेश सुनने लगे।

दूसरी तरफ विद्याधर का पुत्र जो सीता का सगा सहोदर भाई भामण्डल था; परन्तु उसे पता नहीं था कि सीता मेरी बहन है। वह सीता का अद्भुत रूप देखकर मोहित हो गया और सीता का हरण करने के लिए बड़ी भारी लश्कर लेकर अयोध्या को चला; परन्तु बीच में स्वयं के पूर्वभव की नगरी देखते ही उसे जातिस्मरण हो आया तथा सीता और मैं स्वयं एक ही माता के उदर से जन्मे हैं, हम भाई-बहन ही हैं – ऐसा उसे ख्याल आया, इससे उसे बहुत पश्चाताप हुआ। अरे रे ! सीता तो मेरी सगी बहन है, अज्ञानता से मैंने दुष्ट परिणाम किये; सीता ने जब यह जाना कि ये भामण्डल मेरा भाई है, तब वह भी बहुत प्रसन्न हुई। भामण्डल के पालक पिता विद्याधर राजा ने जब भामण्डल के जातिस्मरण की बात सुनी, तब उन्हें भी वैराग्य हुआ और भामण्डल को राज्य सौंपकर उन्होंने स्वयं दीक्षा ले ली।

## दशरथ वैराग्य

इधर अयोध्या में दशरथ महाराज भी मुनिराज के श्रीमुख से अपने पूर्वभवों का वर्णन सुनकर संसार से विरक्त हुए। राम को राज्य सौंपकर

दीक्षा लेने को तैयार हुए। अंत:पुर में ये बात सुनते ही सभी को राजा दशरथ के वियोग का दुख सताने लगा; परन्तु पुत्र भरत तो यह सुनकर खुश हुआ और उसने विचारा कि पिताजी के सिर पर तो राज्य का भार है, इसलिए उन्हें सभी से पूछना पड़ रहा है और राज्य का प्रबंध करना पड़ रहा है, परन्तु मुझे न तो किसी से पूछना है और न ही कुछ करना है। मैं भी पिताजी के साथ ही दीक्षा लेकर संयम धारण करूँगा।

भरत के इस विचार को विचक्षण बुद्धि भरत की माता केकई को समझते देर न लगी और वे पति और पुत्र के एकसाथ वियोग की कल्पना मात्र से आन्दोलित हो गईं और उनने कुछ भी पूर्वापर विचार किये बिना भरत को रोकने हेतु राजा दशरथ से भरत को राज्य देने की बात कह डाली। राजा दशरथ ने भी उन्हें इस बात के लिए हाँ कह दी। दशरथ और केकई ये बात कर ही रहे थे कि वहाँ वैरागी भरत राजमहल से बाहर निकलकर वन की ओर जाने लगे। यह देखकर राजा दशरथ ने उसे रोककर राज्य संभालने की आज्ञा देते हुए प्रेम से समझाया –

तभी रामचन्द्रजी भी वहाँ आ गये और भरत को समझाते हुए कहने लगे – "पिता के वचनों का उल्लंघन होने से कुल की अपकीर्ति होगी और माता केकई भी तेरे विरह से महान दुःखी होगी। इसलिए पुत्र का कर्त्तव्य है कि माता-पिता को दुःखी नहीं होने देना चाहिये। अभी तेरी उम्र भी कम है, थोड़े समय तू राज्य संभाल ले, फिर हम साथ में ही दीक्षा लेंगे तथा बड़े भाई के हाजिर होते हुए छोटे भाई को राज्य सौंपा – ऐसा भी जगत न कहे, इसलिए मैं तो दूर-दूर वन में या दक्षिण के कोई दूर क्षेत्र में जाकर रहूँगा। तू निश्चिंत होकर राज्य संभाल।" – इसप्रकार राम ने भी भरत का हाथ पकड़ कर पिता की आज्ञा मानने का वास्ता देकर उन्हें राज्य करने पर विवश कर दिया और स्वयं माता-पिता को वंदन करके अयोध्या छोड़कर वन प्रवास के लिए निकल पड़े। सीता और लक्ष्मण भी साथ में ही चल पड़े। दशरथ को मूर्छा आ गई। नगरजनों ने तथा चारों माताओं ने राम को वन जाने से बहुत रोका, परन्तु राम नहीं रुके।

श्री राम का वनगमन देखकर प्रजाजनों तथा अनेक राजा शोकमग्न हो गये। बहुत से राजा संसार की ऐसी स्थिति देखकर वैराग्य प्राप्त कर संसार छोड़कर मुनि हो गये। अब अयोध्या नगरी में भरत को या प्रजाजनों को अच्छा नहीं लगता था। दशरथ राजा भी थोड़े दिन बाद दीक्षा लेकर मुनि हो गये और एकलविहारी होकर विचरते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पधारे।

अहो, मुनि बनने की भावना वाले भरत परमविरक्तचित्त से अयोध्या का राज्य संभालने लगे, मानो दूसरा भरत चक्रवर्ती ही हो ! और 'भरतजी घर में वैरागी' – इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए अन्दर से उदास होने पर भी प्रजा का पुत्रवत् पालन करने लगे। राम, सीता एवं लक्ष्मण अयोध्या छोड़कर (वन) विदेश चले गये।

अहो ! जो राजकुमार भरत निश्चिंत होकर पिता से भी पहले संसार छोड़कर मुनि बनने के लिए महल के बाहर निकल गया हो, उसे फिर से राज्य संभालना पड़े; उसकी अन्तरंग दशा कैसी होगी ? एक ओर राग से सर्वथा अलिप्त ज्ञानचेतना का राज्य और दूसरी ओर लौकिक महान राज्य का कार्य भार ! कैसी विचित्रदशा है ज्ञानी की ! एक ओर मोक्षोन्मुख की ज्ञानचेतना परिणम रही है और दूसरी ओर संसार का रागभाव भी काम कर रहा है। वाह रे वाह ! ज्ञानी की आश्चर्यकारी दशा ! भेदज्ञान के बिना ये समझ में आ जाय – ऐसी नहीं है।

इन सबके बीच धर्मात्मा अपने चैतन्यतत्त्व को कभी भी चूकते नहीं, भूलते नहीं। देखो तो जरा महापुरुषों के जीवन की विचित्रता ! चाहे जैसी प्रतिकूलताओं के बीच भी धर्मात्मा अपने चैतन्यतत्त्व को कभी भी नहीं चूकते अर्थात् उनकी साधना निरन्तर चालू रहती है। यही उनके अन्तरंग जीवन की खूबी है, इसमें ही आराधना का रहस्य है। अस्तु ! सदा ऐसी ही आराधना में वर्तते हुए ऐसे महापुरुष श्री हनुमान की यह कथा चल रही है। हनुमान राम के परममित्र हैं। दोनों चरमशरीरी मित्र। वाह ! हनुमान और राम का मिलाप किसप्रकार कौन से प्रसंग में हुआ। इस प्रसंग का वर्णन यथास्थान आगे किया जायेगा।

# राम का वन-प्रवास

उसके बाद वन-प्रवास में राम, लक्ष्मण और सीता ने कैसी-कैसी परिस्थितियों का सामना किया। इन सबका वर्णन करने वाली रामकथा का अब यहाँ संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या के बाहर भी आनंदपूर्वक विहार करते हैं। जहाँ जाते हैं, वहाँ पुण्य के प्रभाव से उनका अद्भुत् रूप देखकर सभी सन्मान करते हैं। राम-लक्ष्मण के साथ होने के कारण चाहे जितने भयंकर वन में भी कोमलांगी सीता को कभी डर नहीं लगता। वे सभी नये-नये तीर्थों के दर्शन कर आनन्दित होते हैं। वीतरागी मुनिवरों के दर्शन होते ही भक्ति करते हैं, धर्मोपदेश सुनते हैं, आपस में धर्म चर्चा भी करते हैं। अहा, अयोध्या के राजपुत्र वन-विहारी मुनियों जैसे विचरण कर रहे हैं। वहाँ उन्हें अच्छे-बुरे अनेक प्रसंग देखने मिलते हैं, जिनका वे अपने बुद्धि, बल एवं विवेक से निराकरण करते हैं।

**वज्रकरण का भय निवारण** —मालव देश के दशांगनगर के राजा वज्रकरण ने ऐसी प्रतिज्ञा की, कि जिनदेव, जिनमुनि और जिनवाणी के अतिरिक्त मैं किसी को भी नमस्कार नहीं करूँगा। उज्जैनपति सिंहोदर राजा उसे अन्यत्र नमाने के लिए उसके ऊपर घेरा डालकर नगर को उजाड़ रहा था, तब जिनधर्म के प्रति परम वात्सल्यधारी राम-लक्ष्मण ने सिंहोदर राजा को जीतकर वज्रकरण की रक्षा की और अपना साधर्मी प्रेम बतलाया तथा उन दोनों राजाओं को एक दूसरे का मित्र बना दिया, इसप्रकार वे देशाटन करते हुए बीच में अनेक राजाओं का निग्रह करके सज्जनों के ऊपर उपकार करते हैं, मुनिवरों या धर्मात्माओं के ऊपर हो रहे उपसर्ग को दूर करते हैं। अद्भुत पुण्य-प्रताप से उन्हें सर्वत्र सफलता मिलती है। महापुरुष महल में हों या वन में, परन्तु उनका पुण्य-प्रताप छिपा नहीं रहता।

**मुनिवरों का उपसर्ग निवारण** — विचरण करते हुए राम-लक्ष्मण वंशस्थल नगर के समीप आये और उसके पास वंशधर

पर्वत पर विराजमान देशभूषण-कुलभूषण मुनिराजों के ऊपर का देवकृत भयानक उपसर्ग दूर किया, उन मुनियों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, मुनिवरों को केवलज्ञान होते ही राम-लक्ष्मण ने ऐसी अद्भुत भक्ति की, कि सीता भी आनन्द से नाच उठी – ऐसी अद्भुत जिन-महिमा देख कर हजारों जीव आश्चर्य चकित हो गये तथा बहुत से जीवों ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया।

**गिद्ध पक्षी जटायु को धर्म प्राप्ति** – देशभूषण-कुलभूषण मुनियों का उपसर्ग दूर कर तथा उनकी भक्ति करके राम, लक्ष्मण और सीता नर्मदा किनारे आये, वहाँ गुप्ति-सुगुप्ति नाम के आकाशगामी मुनियों को परम भक्ति से आहारदान कराया। उस समय अतिशयवंत मुनियों को देखकर एक गिद्ध पक्षी को जाति-स्मरण हुआ, वह वृक्ष के नीचे विराजमान मुनिराज के चरणों में पड़ गया।

ऋद्धिधारी मुनिराज की चरण-धूल के प्रताप से उस पक्षी का शरीर रत्न-समान अत्यंत तेजस्वी बन गया; आश्चर्य को प्राप्त वह पक्षी आनन्दमय अश्रु सहित, पंख पसार कर मुनिराज के समीप मोर की तरह नाचने लगा। अहो, माँसाहारी पक्षी भी जिनमुनि की शरण में आते ही अत्यन्त शान्त बन गया, उसे जातिस्मरण हुआ और उसके परिणाम निर्मल हुये।

वे गुप्ति और सुगुप्ति दोनों मुनि वाराणसी नगरी के राजकुमार थे; वे वैराग्य पाकर मुनि हुये थे, गिद्ध पक्षी ने मुनिराज से धर्मोपदेश सुनकर श्रावक के व्रत लिये तथा हिंसादि पापों का त्याग किया; अभक्ष्य छोड़ दिया और बारम्बार पैर ऊँचे करके चोंच हिलाकर मुनियों की वंदना करने लगा। इस तरह गिद्ध पक्षी ने श्रावक धर्म अंगीकार किया। ये देखकर सीता अति प्रसन्न हुई तथा वात्सल्यभाव से उसने खूब प्रीतिभाव जताया। मुनिराज भी जाते-जाते समझा गये कि इस भयानक वन में क्रूर जीव बसते हैं, इसलिए आप इस सम्यग्दृष्टि पक्षी की रक्षा करना, पक्षी को जिनधर्मी जानकर राम-लक्ष्मण-सीता उसके प्रति धर्मानुराग करने लगे, सीताजी तो माता समान उसका पालन करती थीं।

अहो ! देखो तो सही जैनधर्म का प्रभाव !! गिद्ध जैसे क्रूर, माँसाहारी पक्षी ने भी मुनि के संग में जैनधर्म प्राप्त कर लिया और अद्भुत रूपवान बन गया। वाह रे वाह ! साधर्मी ! भले ही तू तिर्यंचगति से हो तो भी धर्मात्माओं को तेरे ऊपर प्रेम आता है। तेरी अद्भुत दशा देखकर वन के दूसरे पशु-पक्षी भी आश्चर्य पाते हैं। अहो, जैन मुनियों की जिस पर कृपा हुई, उसके महाभाग्य की क्या बात ?

**लक्ष्मण को सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति** – राम-लक्ष्मण ने दंडकवन में वास किया। एकबार लक्ष्मण वन की शोभा देखने निकले; वहाँ एकाएक आश्चर्यकारी सुगंध आई....जहाँ से सुगंध आ रही थी, वहाँ जाकर देखा तो एक अद्भुत 'सूर्यहास' तलवार चमक रही थी। रावण की बहन चन्द्रनखा और उसके पुत्र शंबुक ने १२ वर्ष की विद्या साधना द्वारा ये दैवी 'सूर्यहास' तलवार सिद्ध की थी, परन्तु यह सिद्ध हुई कि इतने में ही लक्ष्मण ने आकर उसे हाथ में लेकर उसकी तीक्ष्ण धार को देखने हेतु उसे बाँस के बीड़े (समूह) के ऊपर चलाया, जिससे उस बाँस के बीड़े (समूह) के बीच में स्थित शंबुक का शिर भी छिद गया।

अरे देव ! विद्या द्वारा तलवार साधी किसी ने, हाथ में आई किसी दूसरे के। बारह वर्ष की तपस्या द्वारा सिद्ध हुई तलवार स्वयं के ही घात का कारण बनी....अरे ! तलवार को साधने के बदले आत्मा को साधा होता तो कैसा उत्तम फल पाता। रावण के पास 'चंद्रहास खड्ग' था, उसके सामने लक्ष्मण को यह 'सूर्यहास खड्ग' प्राप्त हुआ। देखो, पुण्य प्रभाव ! बिना साधे भी पुण्य-प्रताप से उसे यह सूर्यहास तलवार हाथ आ गई और हजारों देव उसे वासुदेव जानकर उसकी सेवा करने लगे।

**खरदूषण से लड़ाई** – शंबुक का पिता खरदूषण उस समय समुद्र के बीच दूसरी पाताल लंका का स्वामी था। शंबुक के मरण की बात सुनते ही उसे क्रोध आया और वह तुरन्त आकाशमार्ग से १४,००० राजाओं सहित दंडकवन में आया। सेना के भयानक शब्दों को

सुनकर सीता भयभीत हो गई। राम ने धैर्य बंधाया और शत्रु के सामने लड़ने को बाण हाथ में लिया, परन्तु लक्ष्मण ने उन्हें रोका और कहा –

"बड़े भ्राता ! जब मैं हाजिर हूँ फिर आपको परिश्रम करने की जरूरत नहीं, आप यहीं रहो और भाभी सीता की रक्षा करो। मैं अकेला ही दुश्मनों को भगा डालूँगा"

– ऐसा कहकर लक्ष्मण लड़ने चले गये। एक तरफ हजारों विद्याधर और दूसरी तरफ अकेले लक्ष्मण। बड़ा युद्ध हुआ। विद्याधरों के हजारों बाणों को लक्ष्मण अकेले ही रोकने लगे। **जैसे संयमी मुनि आत्मज्ञान द्वारा विषय-वासनाओं के समूह निवारण करते हैं, वैसे ही लक्ष्मण वज्र-बाणों द्वारा दुश्मनों का निवारण करते थे।** विद्याधरों की सेना घबड़ा गई। खरदूषण का समाचार पाकर रावण भी उसकी सहायता के लिए क्रोध से धधकता हुआ पुष्पक-विमान में बैठकर युद्ध स्थल की ओर चल दिया।

मार्ग में राम के समीप सीता को देखकर; उसके अद्भुत रूप के सामने रावण आश्चर्यचकित हुआ और उसका क्रोध भी पल भर में ठंडा हो गया। वह सीता के रूप पर ऐसा मोहित हुआ कि 'इस सीता के बिना मेरा जीवन व्यर्थ है !' ऐसा विचार कर खरदूषण की सेना में किसी को भी मेरे आने की खबर पड़े, उसके पहले ही मैं चुपचाप सीता को हरकर घर ले जाऊँ; परन्तु सीता के समीप ही रामचन्द्र बैठे होने से, अपकीर्ति के भय से रावण की हिम्मत न पड़ी।

विद्या के बल से उसने जाना कि 'लक्ष्मण सिंहनाद करे तो राम यहाँ से उसके पास जायेंगे और सीता अकेली रह जायेगी' – ऐसा विचार कर रावण ने कपट से लक्ष्मण जैसी ही आवाज निकाली – 'हे राम ! हे राम ! – ऐसा कृत्रिम सिंहनाद किया। अरे रे ! कामांध रावण सिंहनाद द्वारा मानो अपनी मृत्यु को ही बुला रहा हो।

सिंहनाद सुनते ही राम को आघात लगा, वे तुरन्त हाथ में धनुष-बाण लेकर लक्ष्मण की मदद के लिए दौड़ पड़े।

## सीता का अपहरण और राम की विरह वेदना–

राम गये, उसके बाद रावण सीता को उठा ले गया। उस समय सीता पर सगे भाई के समान प्रेम करने वाले जटायु पक्षी ने रावण को चोंच मार-मारकर सीता को छुड़ाने की बहुत कोशिश की, परन्तु रावण जैसे बलवान के सामने बैचारे पक्षी की क्या चले ? अन्त में रावण के प्रहार से वह मूर्छित हो गया और रावण पुष्पक-विमान में सीता को लेकर लंका की ओर भाग गया।

सीता अत्यन्त विलाप कर रही थी। राम के विरह में सीता का रुदन देखकर रावण भी उदास हो गया। अरे, ये सीता अपने स्वामी के गुणों में ही आसक्त है, ये स्वप्न में भी दूसरे को चाहने वाली नहीं और मैं इससे जबरदस्ती भी कर नहीं सकता; क्योंकि मैंने मुनिराज के पास प्रतिज्ञा की है कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी, उससे मैं जबरदस्ती नहीं करूँगा, परन्तु लंका जाकर मैं इस हठीली स्त्री को भी किसी उपाय से वश में करूँगा – ऐसा विचारता हुआ रावण, सीता को लेकर लंका की तरफ चला गया। जैसे-जैसे लंका उसके पास आ रही थी, मानो वैसे-वैसे उसका मरण भी पास आ रहा था।

यहाँ लक्ष्मण खरदूषण की सेना के सामने लड़कर उसे भगाने की तैयारी में ही है कि राम वहाँ आ पहुँचे। राम को देखते ही लक्ष्मण को धक्का-सा लगा और कहने लगा।

"हाय, हाय ! आप ऐसे भयंकर वन में सीता को अकेली छोड़कर यहाँ क्यों आये ?"

राम ने कहा – "मैं तेरा सिंहनाद सुनकर आया हूँ।"

लक्ष्मण ने कहा – "अरे, मैंने तो कोई सिंहनाद किया ही नहीं मुझे शत्रु का कोई भय ही नहीं, जरूर किसी ने मायाचारी की है; इसलिए आप शीघ्र ही जानकी भाभी के पास वापिस जाओ।"

लक्ष्मण की बात सुनते ही राम को सीता का संदेह हुआ.... "अरे, उस अकेली का क्या हुआ होगा।" – इत्यादि विचार करते हुए वे शीघ्र

ही अपने स्थान पर आकर देखते हैं, जब जानकी दिखाई नहीं दी तो कदाचित् 'मुझे दृष्टिभ्रम हुआ होगा !' – ऐसा समझकर राम पुनः पुनः आँखों को मलकर चारों ओर नजर डालते हैं, परन्तु सीता वहाँ हो तो दिखे ना ! राम तो 'हाय सीता !' कहते हुए मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। मूर्छा उतरी, तब पुनः चारों ओर ढूँढते-ढूँढते एक जगह जटायु पक्षी को तड़फता देखा, वह भी मरण की तैयारी में था, तुरन्त राम ने सब कुछ भूलकर पहले उसे पंचपरमेष्ठी का नमस्कार मंत्र सुनाया। दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप की आराधना सुनाई तथा अरहंतादि का शरण ग्रहण कराया। सम्यक्त्वसहित श्रावकव्रत का धारक वह पक्षी महान शांतिपूर्वक श्री राम के मुख से धर्म श्रवण करते-करते समाधिमरण करके स्वर्ग में गया और भविष्य में मोक्ष पायेगा।

'एक तो सीता का विरह दूसरे जटायु पक्षी का मरण।' – इस प्रकार दुगने शोक के कारण राम एकदम विह्वल हो गये। चारों तरफ वृक्षों तथा पत्तों से पूछने लगे –

"हे ऊँचे गिरिराज ! मैं दशरथ राजा का पुत्र राम, तुम से पूछता हूँ कि मेरी प्राण वल्लभा सीता को कहीं तुमने देखा है ?"

कौन जवाब दे ! पश्चात् क्रोध से हाथ में धनुष लेकर टंकार करते हैं, परन्तु किसे मारें ? डर के कारण सिंह, वाघ आदि क्रूर प्राणी भी दूर भाग गये....राम पछताने लगे।

"अरे रे, झूठ सिंहनाद में भ्रमित हो गया और अकेली सीता को छोड़ गया। अरे, कहीं सीता को सिंह-वाघ तो नहीं खा गये ? दूसरी ओर भाई लक्ष्मण भी अभी लड़ाई में है, वह भी जीवित आयेगा या नहीं ? इसका भी संदेह है ! अरे रे ! सारा संसार ही असार तथा संदेह रूप है। संयोगों का क्या भरोसा ! संसार का ऐसा स्वरूप जानते हुए भी मैं सीता के मोह से आकुल-व्याकुल हो रहा हूँ।"

पाठको ! ध्यान रखना ऐसे समय में भी श्रीरामचन्द्रजी धर्मात्मा हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, मोक्ष को भी साध रहे हैं, उनकी ज्ञानचेतना नष्ट नहीं हुई।

औदयिक भाव के समय भी उदयभाव, उदयभाव का काम करते हैं; ज्ञानचेतना, ज्ञानचेतना का काम करती है; दोनों का कार्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न है। अकेले औदयिक भावों में राम को नहीं देखना, उनसे भिन्न ज्ञानचेतना रूप राम को भी देखना, तभी तुम राम को पहिचान सकोगे। अकेले उदयभावों से राम को पहिचानोगे तो राम के साथ अन्याय करोगे, तुम्हारा ज्ञान भी मिथ्या नाम पायेगा।

जैन महापुरुषों के जीवन की खूबी ही यह है कि उदयभावों के बीच भी चैतन्यभाव की मीठी, मधुर, शांतधारा उनके जीवन में निरन्तर बहती रहती है। पूर्व के पुण्य-पाप का उदय तो धर्मी को भी आता है – ऐसा जानकर हे भव्यजीवो ! पुण्योदय में तुम मोहित मत होना और पाप के उदय में धर्म को नहीं छोड़ना।

संसार की (पुण्य-पाप की) ममता छोड़कर, चैतन्यभाव द्वारा सदा ही जिनधर्म की आराधना में चित्त को जोड़ो।

## लक्ष्मण की विजय और खरदूषण का मरण –

यहाँ – खरदूषण की विशाल सेना के सामने लक्ष्मण अकेले ही लड़ रहे हैं, इतने में वहाँ से विराधित नाम का विद्याधर राजा निकला, उसने स्वयं की सेना सहित लक्ष्मण की मदद की। खरदूषण, स्वयं के पुत्र को मारने वाले लक्ष्मण को मारने के लिए तलवार लेकर दौड़ा, परन्तु लक्ष्मण ने सूर्यहास तलवार द्वारा उसका मस्तक छेद दिया। अरे, पुत्र ने बारह वर्ष के तप द्वारा जो तलवार साधी, उसी तलवार द्वारा ही उसका और उसके पिता का घात हुआ !

अरे, पुण्य-पाप के खेल संसार में विचित्र हैं।

इसप्रकार लक्ष्मण ने खरदूषण को मार गिराया और उसकी पाताल लंका का राज्य विराधित को सौंपा और स्वयं विद्याधरों सहित तुरन्त राम के पास आये। आकर देखते हैं तो राम जमीन पर पड़े हैं और सीता कहीं दिखाई हीं नहीं देती, जटायु भी वहीं जमीन पर पड़ा है।

लक्ष्मण ने राम को सचेत करते हुए कहा – "अरे बन्धु ! उठो-उठो ! ऐसे जमीन पर कैसे सो रहे हो ? सीताजी कहाँ हैं ?"

तब राम ने सचेत हुए, लक्ष्मण को कुशल देखकर थोड़ा संतोष हुआ; उसे हृदय से लगाकर राम रो पड़े और कहा –

"हे लक्ष्मण ! सीता कहाँ गई – ये मैं नहीं जानता, कोई उसे ले गया या सिंह उसे खा गया ? उसकी मुझे खबर नहीं।"

लक्ष्मण ने उन्हें धैर्य बँधाया और विद्याधरों को आज्ञा की –

"जहाँ से हो, वहाँ से सीता का शीघ्र पता लगाकर आओ"

विद्याधरों ने बहुत शोधा (खोजा), परन्तु सीता कहीं दिखाई नहीं पड़ी, इससे राम हतास हो गये –

"अरे हम माता-पिता, भाई, कुटुम्ब और राज्य सभी को छोड़कर यहाँ वन में आये, यहाँ भी असाता कर्मों ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा.... अरे, विचित्र है संसार की गति !"

तब पाताल लंका के नये राजा विद्याधर विराधित ने उन्हें धैर्य बंधाया –

"हे स्वामी ! धैर्य ही महापुरुषों का सर्वस्व है। सभी प्रसंगों में धैर्य के समान दूसरा कोई उपाय नहीं। आपका पुण्य-प्रताप महान है, इससे थोड़े ही दिनों में आप सीतादेवी को जरूर देखोगे, इसलिए शोक छोड़ो और अब मेरे साथ पाताल लंका में आकर रहो। वहाँ से सब उपाय करेंगे। इस वन में रहना अब उचित नहीं, क्योंकि रावण के बहनाई खरदूषण को हमने मारा है, इसलिए उसके मित्र विद्याधर राजा वैर लिये बिना नहीं रहेंगे; उसमें भी हनुमान जैसा महान शूरवीर, वह भी खरदूषण का जमाई है – वह भी खरदूषण के मरण की बात सुनते ही एकदम क्रोधित होगा, इसलिए आप सुरक्षित स्थान में आकर रहो।"

राम और लक्ष्मण दोनों भाई उदास होकर विराधित के साथ पाताल लंका की अलंकारोदय नगरी को चले....दोनों उदास हैं। जैसे

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र नहीं शोभते, वैसे ही सीता के बिना राम-लक्ष्मण नहीं शोभते थे। सीता के साथ तो वन में भी अच्छा लगता था, सीता के बिना राजमहल में भी अच्छा नहीं लगता। सीता के बिना राम गुमसुम उदासचित्त रहते हैं....एक चैतन्य परिणति के अलावा अन्यत्र कहीं उनका चित्त नहीं लगता था। वे जितने समय जिन-मंदिर में जाकर बैठते थे, उतने समय उनके चित्त में शांति रहती थी और सीता के विरह का दुःख कम होता था। लक्ष्मण, विराधित वगैरह सभी राम को प्रसन्न रखने के लिए अनेक उपाय करते थे, सीता के भाई भामण्डल को भी संदेश भेजकर बुला लिया था।

दूसरी ओर आकाशमार्ग से सूर्य से भी ऊपर रावण का विमान जा रहा था, (क्योंकि विद्याधर तो मेरु पर्वत के छोर तक भी जाते हैं और सूर्य-चन्द्र तो मेरुपर्वत की अपेक्षा बहुत नीचे हैं अर्थात् सूर्य-चन्द्र से भी ऊपर गमन करना विद्याधर मनुष्यों के लिए सहज है) उस समय रत्नजटी नाम के विद्याधर को सीता के रुदन की आवाज सुनाई पड़ी, इस कारण उसने रावण को रोका और कहा –

"अरे दुष्ट ! इस धर्मात्मा-सीता को तू छोड़ दे, सती को सताने का महान अपराध करके तू कहाँ जायेगा ? ये सीता श्री रामचन्द्रजी की रानी और मेरे मित्र भामण्डल की सगी बहन है, उसे तू छोड़ दे।"

परन्तु रावण ने उसकी एक न सुनी और उसकी विद्यायें हर लीं, इससे वह नीचे गिर पड़ा।

रावण सीता को लेकर लंका पहुँचा....उसका मन सीता में मोहित है, वह सीता में भी मोह उत्पन्न करने के लिए बहुत विनती करता है, परन्तु ये तो सीता है !....अरे रावण ! तू घर भूला है ! तू विवेक भूला है ! जैसे मणिधर नाग के शिर में से उसके जीवित रहते कोई उसका मणि निकाल नहीं सकता, वैसे ही सीता के हृदय में राम के अलावा कोई मोह नहीं उत्पन्न करा सकता।

## सीता राम के विरह में भी शील में अडिग –

लंका में रावण ने एक अत्यन्त मनोहर दैवी-बगीचे में सीता को रखा....परन्तु सीता को राम के बिना कहीं चैन नहीं....।

उसने प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक राम-लक्ष्मण के कुशल-क्षेम की बात न सुन लूँ, तब तक मेरे आहार-जल का त्याग है। दिन-रात उसे चिन्ता हो रही थी कि राम-लक्ष्मण युद्ध में गये थे, उनका क्या हुआ होगा? यहाँ उनके समाचार कौन देगा; वह भी जितने समय पंचपरमेष्ठी में चित्त को लगाती है, उतने समय संसार के सर्व दुःखों को भूल जाती है। वाह, पंचपरमेष्ठी भगवंतो ! तुम्हारा प्रताप अजोड़ है ! हमारे हृदय में जब तक तुम्हारी उपस्थिति है, तब तक संसार का कोई दुःख टिक नहीं सकता।

लंका में जैसे राम के विरह में सीता उदास है, वैसे ही पाताल लंका में सीता के विरह में राम भी उदास हैं तथा जैसे राम उदास हैं, वैसे रावण भी सीता के बिना उदास है। वहाँ उसकी पटरानी मंदोदरी उससे पूछती है –"तुम तीन खंड के स्वामी हो, फिर भी इतने उदास क्यों हो ?"

तब रावण उससे सीता की बात बताते हुए कहता है कि हे रानी ! "सीता के बिना मुझे चैन नहीं है।"

मंदोदरी कहती है – "आप तो महा शक्तिशाली हो, तो सीता को जबरदस्ती वश में क्यों नहीं करते ?"

तब रावण कहता है – "सुनो देवी ! मैंने अनंतवीर्य केवलीप्रभु के समीप ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी, उसे मैं नहीं भोगूँगा, उस पर बलात्कार नहीं करूँगा और सीता मुझे जरा भी चाहती नहीं, इसलिए मैं मेरी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।"

देखो ! एक छोटा-सा नियम भी रावण को कितना उपयोगी हुआ, इस नियम ने ही उसे सीता पर बलात्कार करने से रोका।

रावण की बात सुनकर मंदोदरी विचार में पड़ गई –

"अहो ! तीन खंड का जो स्वामी और अद्भुत जिसका रूप –

ऐसे रावण को भी जो नहीं चाहती, वह सीता कितनी महान होगी ? और रावण जैसा १४ हजार सुन्दर-सुन्दर रानियों का स्वामी, जिसके रूप पर मोहित है, वह सीता कितनी सुन्दर होगी ?''

मंदोदरी को ऐसा लगा –''मैं सीता के पास जाऊँ और उसे मनाकर अपने स्वामी का दुःख मिटाऊँ !''

वह सीता के पास गई, उसे देखकर वह भी आश्चर्य चकित हो गई थी। उसने कहा –

''हे देवी सीता ! तू रावण के ऊपर प्रसन्न हो ! उसकी इच्छा के वश हो, राम की आशा छोड़ दे। यहाँ तेरा राम तुझे छुड़ाने आ सके – ऐसा तो है नहीं। ये तो बड़े भारी समुद्र के बीच विद्याधरों की लंका नगरी है; इसलिए तू शोक छोड़कर प्रसन्न हो और रावण की रानी बन जा ! व्यर्थ का दुःख मत कर।''

तब जिसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं – ऐसी सीता कहने लगी – ''हे देवी ! आप तो मेरी माता समान हो, आप स्वयं पतिव्रता होने पर भी ऐसे नीति-विरुद्ध वचन क्यों बोलती हो ? ये तुम्हें शोभा नहीं देता, रावण का अति सुन्दर रूप हो या उसकी तीन खंड की राज-संपदा हो, उसे मैं अपने शीलव्रत के सामने सर्वथा तुच्छ समझती हूँ।''

(सती मंदोदरी के चरित्र के साथ न्याय करने की खातिर एक बात का यहाँ उल्लेख करना उचित है। ''कितने ही पुराणों में ऐसा भी आता है कि सती मंदोदरी ने रावण को इस दुष्कृत्य से रोकने का बहुत प्रयत्न किया तथा सीता को भी अपनी पुत्री समान समझ कर आश्वासन तथा हिम्मत दी कि – ''बेटी सीता ! तू किसी भी प्रकार से रावण के वश नहीं होना! शीलधर्म में अडिग रहना.... घबड़ाना मत !'')

अभी मंदोदरी और सीता की बात चल ही रही थी कि कामातुर रावण वहाँ आ पहुँचा। तब सीता ने उसका तिरस्कार करके क्रोध में कहा – ''अरे पापी ! दुष्ट ! तू मुझसे दूर रहना, मुझे छूना मत !''

सीता के प्रताप के सामने, रावण जैसे रावण की आँखों के सामने भी थोड़ी देर के लिए अंधेरा छा गया। लंका के बगीचे में अकेली सुकोमल सीता सती, अनेक उपद्रवों के बीच भी अपने शीलव्रत से रंचमात्र भी न डिगी – धन्य हो ऐसी महासती सीता को !

रावण का भाई विभीषण धर्मात्मा था और रावण के दरबार का खास सलाहकार था। उसे जब खबर पड़ी, तब वह सीता के पास आया। सीता रो रही थी, वह प्रथम तो भयभीत हो गई, परन्तु विभीषण ने कहा – "बहन ! तू डर मत, मुझे अपना भाई समझ, मैं रावण को समझाऊँगा।"

विभीषण ने रावण को बहुत समझाया – "सीता सती धर्मात्मा है, उसे सन्मान सहित श्री राम को वापिस सौंप दो – ऐसा अनीति का कार्य तुम्हें शोभा नहीं देता।"

अभिमानी रावण ने उसकी एक बात नहीं मानी, उलटा ये कहने लगा – "मैं तीन खंड का स्वामी हूँ, इसलिए तीन खंड में जितनी सुन्दर वस्तुयें हैं, वे सब मेरी ही हैं।"

सीता बगीचे में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी है। अनेक विद्याधर विविध सामग्रियों द्वारा उसे प्रसन्न करना चाहते हैं, परन्तु **जैसे मोक्ष के साधक मुमुक्षु का मन संसार में नहीं लगता, वैसे ही सीता का मन उनमें कहीं नहीं लगता। जैसे अभव्य जीव मोक्ष सिद्ध नहीं कर सकते; वैसे ही रावण की दूतियाँ सीता को साध न सकीं, वश में न कर सकीं।** रावण बारम्बार दूती से पूछता है, दूती द्वारा रावण ने जाना कि सीता ने आहार-पानी भी छोड़ दिया है और वह किसी के सामने देखती भी नहीं है, पूरे दिन गहरे विचारों में गुमसुम बैठी रहती है – यह सुनकर रावण खेद-खिन्न हुआ और चिन्ता में डूब गया.... और निराश होकर लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगा।

अरे रे ! ढाई हजार सुन्दरियों का स्वामी भी विषयों की अग्नि में कैसा जल रहा है !! ऐसी दुःखमय विषय-तृष्णा से छूटकर जिसने निर्विषय चैतन्यतत्त्व के महा-आनन्द को साधा, वे महात्मा इस जगत में धन्य हैं।

एक दिन दण्डक वन में अनायास ही लक्ष्मण को सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति हई और उसके प्रयोग करने मात्र से खरदूषण के पुत्र शंवुक का मरण हुआ, तब खरदूषण और लक्ष्मण में भयंकर युद्ध दिया, उस युद्ध में सहायतार्थ आ रहे रावण ने सीता का अवलोकन मात्र किया और उस पर मुग्ध होकर राम को छलपूर्वक सीता से पृथक् कर सीता का हरण कर लिया। तब सीता की खोज करते हुए राम-लक्ष्मण का मिलन किष्किंधा नगरी के राजा सुग्रीव से हुआ।

उस समय किष्किंधा नगरी के महान राजा सुग्रीव के यहाँ एक विचित्र बात बनी। सुग्रीव की पत्नि सुतारा अत्यन्त मनोहर थी; साहसगति नाम का एक विद्याधर उस पर मोहित हुआ और वह स्वयं सुग्रीव जैसा ही रूप बनाकर महल में घुस गया और सच्चे सुग्रीव को निकाल दिया। सच्चा सग्रीव स्त्री के विरह में बहुत दुःखी हुआ, उसने अपने दामाद हनुमान की मदद माँगी; परन्तु दोनों में से सच्चा सुग्रीव कौन है और झूठा सुग्रीव कौन है ? यह नहीं पहिचान सकने के कारण हनुमान भी कुछ नहीं कर सका।

अंत में वह सुग्रीव राम-लक्ष्मण की शरण में आया। राम भी स्त्री के विरह में दुःखी थे और सुग्रीव भी स्त्री के विरह में दुःखी थे। दोनों समान दुखिया एक-दूसरे के मित्र बने। सुग्रीव राजा वानरवंशी विद्याधरों का अधिपति था; उसका बड़ा भाई बालीराज रावण को मस्तक नमाने के बदले जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गये थे, सुग्रीव ने आकर राम को सभी बातें बताईं।

श्री राम ने विचार किया कि – "मैं इसकी स्त्री वापिस दिलाकर इसका विरह मिटा दूँगा तो ये भी सीता की खोज करने में मेरा सहयोग करेगा और यदि यह भी खोज नहीं कर सका तो मैं निर्ग्रंथ मुनि होकर मोक्ष को साधूँगा।"

सुग्रीव ने पुनः कहा – "हे स्वामी ! मेरा कार्य होने पर मैं भी तुरन्त ही सीता को खोज लूँगा।"

– इस कारण राम ने साहसगति को हराकर सुग्रीव की स्त्री और

उसका राज्य वापिस दिला दिया, परन्तु अपनी सुतारा को पाते ही वह उसमें ऐसा आसक्त हो गया कि उसने राम को सीता को खोजने का वचन दिया है – ये भी भूल गया।

**सीता की खोज –** जैसे मुनिराज मुक्ति का ध्यान करते हैं, वैसे ही राम भी सदा सीता का ही ध्यान करते, सीता के सिवाय उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता। सीता को बारम्बार याद करके श्री राम विचारते हैं –

"अरे, सुग्रीव को उसकी सुतारा पत्नि मैंने दिला दी, परन्तु वह मेरी सीता का कोई समाचार नहीं लाया। स्वयं का दुःख मिटते ही मेरा दुःख भूल गया अथवा सीता मर गई – इस कारण वह मुझे कहने तक नहीं आया ?"

– ऐसे विचारों से श्री राम की आँखों में से आँसू गिरने लगे। श्री राम की ऐसी दशा देखकर लक्ष्मण से नहीं रहा गया। उसने सुग्रीव को जाकर धमकाते हुए कहा – "रे दुष्ट ! मेरे भाई श्री राम दुःखी हैं और तू अपनी स्त्री के साथ मौज में पड़ गया। सीता को खोजने के तेरे वचन को क्या तू भूल गया ? अतः बनावटी सुग्रीव का जैसा हाल श्री राम ने किया, वैसा ही मैं तेरा हाल करता हूँ।"

तुरन्त ही सुग्रीव लक्ष्मण के चरणों में नतमस्तक हो गया और कहा– "हे देव ! मुझे क्षमा करो, मैं अपना वचन भूल गया; अब मैं कहीं से भी सीता का पता लगाकर आता हूँ।"

– ऐसा कहकर तुरन्त ही देश-विदेश के विद्याधरों को उसने आज्ञा दी – "सीता कहाँ है, उसकी खोज शीघ्र करो। वन में, जंगल में, आकाश में, पाताल में, जम्बूद्वीप में, लवणसमुद्र में, मेरुपर्वत पर, ढाई द्वीप में सर्वत्र ढूँढकर जहाँ हो, वहाँ से सीता का पता लगाओ।"

– ऐसा कहकर सुग्रीव स्वयं भी आकाशमार्ग से सभी जगह खोजने गया। आकाश में जाते हुये सुग्रीव ने नीचे एक पर्वत पर बेहोश होकर पड़े विद्याधर रत्नजटी को देखा। सुग्रीव ने उसके पास जाकर प्रेम से पूछा –

"हे भाई रत्नजटी ! तुम्हारी विद्या कहाँ गयी ? तुम यहाँ धूल में क्यों पड़े हो ?" तब भयभीत रत्नजटी ने कहा – "हे स्वामी ! दुष्ट रावण सीता को हरकर ले जा रहा था, सीताजी रो रही थीं, उसे छुड़ाने के लिए मैंने रावण का विरोध किया, इससे रावण ने मुझे मारा और मेरा ये हाल कर दिया है।"

सीता के ये समाचार सुनते ही हर्षित होकर सुग्रीव उस रत्नजटी को अपने साथ लेकर राम के पास आये। रत्नजटी ने आकर राम-लक्ष्मण को प्रणाम करते हुए कहा – "हे स्वामी ! मैं सीता का भाई भामण्डल का सेवक हूँ, मैंने रावण को सीता का हरणकर ले जाते देखा है। महासती सीता रुदन करती थी। मैंने उसे रावण से छुड़ाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु कहाँ कैलाश को हिलाने वाला रावण और कहाँ मैं ? उसने मेरी विद्या छीनकर मेरा ये हाल कर दिया और सीता को लंका की ओर उड़ा ले गया।"

सीता की बात सुनते ही राम के रोमांच खड़े हो गये; विद्याधरों से वे पूछने लगे – "लंका यहाँ से कितनी दूर है और रावण का बल कितना है ?"

राम का ये प्रश्न सुनते ही सभी विद्याधर नीचे देखने लग गये, कोई बोला नहीं, सभी के मुख पीले पड़ गये; तब राम समझ गये कि ये सभी विद्याधर रावण से बहुत डरते हैं।

पश्चात् विद्याधरों ने कहा – "हे देव ! जिसका नाम लेने से हमको डर लगता है, वह रावण की बात हम क्या कहें ? रावण की ताकत की तो क्या बात ? अब तो सीताजी हाथ से गई ही समझें। सीता वापिस मिलने की आशा आप छोड़ दें।"

लक्ष्मण ने क्रोधित होकर पूछा – "आप लोग डर क्यों रहे हैं, रावण की लंका है कहाँ यह तो कहो ? यदि रावण शूरवीर था, तो चोर की भांति सीता को क्यों ले गया ? एक बार मुझे उसका पता तो बताओ? फिर मैं उसका क्या हाल करता हूँ – यह देखना।"

तब विद्याधर बोले – "हे लक्ष्मण ! इस जम्बूद्वीप के चारों तरफ लवण समुद्र है, उसके बीच राक्षस द्वीप है, उसके बीच नव योजन ऊँचा और पचास योजन विस्तार वाला त्रिकुटाचल पर्वत है, उसके ऊपर देवपुरी जैसा अत्यंत मनोहर लंका नगर है। उसका राजा रावण महा बलवान है। विभीषण उसका भाई है, वह भी महाबलवान है; यद्यपि धर्मात्मा है, जिनधर्म का भक्त है। रावण का भाई कुंभकर्ण और पुत्र इन्द्रजीत भी महा बलवान हैं और श्री राम के समान चरम शरीरी हैं। हे राम ! ऐसे बलवान रावण से युद्ध में जीतना अशक्य है; इसलिए ये बात तो करना नहीं। आप तो सीता के समान दूसरी अनेक राजकन्याओं के साथ विवाह कर लेंवे, परन्तु सीता को भूल जावें।"

तब राम कहते हैं – "अरे, दूसरी सभी बातें छोड़ो ! सीता बिना मुझे दूसरी स्त्रियों से प्रयोजन नहीं। जो तुम्हें मेरे ऊपर प्रेम है तो किसी भी प्रकार से मेरी सीता का पता मुझे जल्दी बताओ।"

राम तो बस सीता की ही हठ ले बैठे। लक्ष्मण ने भी क्रोध पूर्वक कहा – "हे विद्याधरो ! तुम इस दुष्ट रावण से डरो मत ! वह तो चोर है। वह बलवान होता तो सीता को चोरी-चोरी क्यों ले जाता ? वह तो कायर है, उसमें शूरवीरता कैसी ? बस ! सीता का पता मिलते ही अब सीता मिल गई ही समझो। अब जल्दी लंका पहुँचने का उपाय करो।"

राम-लक्ष्मण का पराक्रम देखकर सुग्रीव का मंत्री जांबुनद ने विचार किया कि कदाचित् यह लक्ष्मण ही रावण को मारने वाला वासुदेव हो ! अत: उसने राम से कहा – "हे स्वामी ! एक बार रावण ने नमस्कार करके अनंतवीर्य केवली से पूछा था कि मेरा मरण किससे होगा ? तब प्रभु की वाणी में ऐसा आया था कि जो जीव कोटिशिला को उठायेगा, उसके हाथ तेरी मृत्यु होगी।"

ये बात सुनते ही लक्ष्मण ने कहा – "कहाँ है वह कोटिशिला ? चलो, मैं उसे उठाता हूँ!" विद्याधरों के विमान में बैठकर सभी कोटिशिला (निर्वाणशिला) के पास आये। 'इस पावन शिला पर से अनेक जीव सिद्ध हुए हैं' – ऐसा स्मरण करके लक्ष्मण ने उन सिद्ध भगवंतों को नमस्कार

किया और शिला की तीन प्रदक्षिणा दीं। लक्ष्मण ने पंचपरमेष्ठी को याद करके सिद्धों की स्तुति की।

"अहो भगवंतो ! आप तीन लोक के शिखर पर चैतन्य की अतीन्द्रिय सत्ता से शोभ रहे हो। आप संसार से पार, आनन्द के पिंड, पुरुषाकार, अमूर्त तथा एक समय में सबको जानने वाले हो; राग-द्वेष से रहित आप मुक्त हो। आपके भाव सम्पूर्णतः शुद्ध हैं। इस ढाई-द्वीप में अनंत जीव सिद्ध हुए हैं और अनन्तजीव सिद्ध होंगे। मंगल स्वरूप ऐसे सभी सिद्ध भगवान मेरा कल्याण करें।"

इसप्रकार स्तुति करके लक्ष्मण ने कोटिशिला को घुटनों पर्यंत ऊँची उठाई। देवों ने जय जयकार किया। विद्याधर लक्ष्मण की ताकत देखकर आश्चर्य चकित हुए। इसप्रकार कोटिशिला की यात्रा करके, वहाँ से सम्मेदशिखर और कैलाश पर्वत आदि सिद्धक्षेत्रों तथा भरतक्षेत्र के सभी तीर्थों की यात्रा की। तब विद्याधर राजा समझ गये कि अब थोड़े ही समय में तीन खण्ड में राम-लक्ष्मण का राज्य होगा; इसलिए सभी उनकी सेवा करने लगे और सीता को वापिस लाने के लिए क्या करना चाहिये – ये विचारने लगे।

तब राम ने कहा – "हे राजाओ ! अब किस बात के लिए ढ़ील कर रहे हो ? मेरे विरह में सीता अकेली लंका में महादुःखी हो रही होगी; इसलिए जल्दी उपाय करो और रावण के साथ युद्ध करने चलो।"

तब मंत्रियों ने राम को समझाया – "हे देव ! अपने को तो सीता मिल जाये – ये प्रयोजन है, युद्ध का प्रयोजन नहीं। तीन खंड का राजा रावण महा बलवान है, उसे जीतना अति कठिन है, इसलिए युद्ध के बिना ही सीताजी वापिस मिल जाये – ऐसा उपाय कीजिए। रावण का भाई विभीषण श्रावक व्रत का धारक धर्मात्मा है, दोनों भाईयों में अतिप्रेम है, उसका वचन रावण नहीं टाल सकता, उसके कहने से वह अवश्य सीता वापिस सौंप देगा। इसलिए हम कुशल दूत को लंका भेजें, परन्तु लंका का मायामयी क़ोट अलंघ्य है। अतः महा शक्तिशाली हनुमान के अलावा

दूसरा तो वहाँ जा ही नहीं सकता और हनुमानजी तो रावण के परममित्र भी है, वे भी उसे समझायेंगे, इसलिए उन्हें ही लंका भेजिए।''

– ऐसा निर्णय होते ही तुरन्त हनुमानजी को बुलाने दूत भेजा गया। दूत श्रीपुरनगर पहुँचा, वहाँ नगरी की शोभा देखते ही वह आश्चर्य चकित हो गया। दूत ने राजमहल में आकर हनुमान और अनंगकुसुमा को सभी बात बताई। अनंगकुसुमा रावण की भानजी थी। उसके पिता और भाई को (खरदूषण और शंबुक को) लक्ष्मण ने मारा है – ये सुनते ही वह मूर्छित हो गई और हनुमान को भी लक्ष्मण पर क्रोध आया, परन्तु दूत ने उसे शांत करके सभी बात बताई की किसप्रकार सुग्रीव का संकट दूर करके उसका राज्य तथा उसकी पत्नि सुतारा श्री राम-लक्ष्मण ने वापिस दिलाई है। – ये सुनकर हनुमान प्रसन्न हुए। (खरदूषण के समान सुग्रीव भी हनुमान के ससुर हैं एक को लक्ष्मण ने मारा, दूसरे को राम ने बचाया।)

तब हनुमान ने कहा – ''सुग्रीव का दु:ख मिटाकर राम ने हमारे ऊपर बड़ा उपकार किया है। इसप्रकार हनुमान ने परोक्षपने राम की बहुत प्रशंसा की। सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा 'पिता का दु:ख मिट गया' – यह जानकर हर्षित हुई।''

एक ही राजा की दो रानियाँ ! उसमें एक रानी के यहाँ पिता के मरण का शोक और दूसरी रानी के यहाँ पिता की विजय का उत्सव ! कैसा विचित्र है संसार ! ऐसे संसार के बीच रहते हुए भी अपने चरित्र नायक की ज्ञानचेतना अलिप्त ही रहती है....वे मोक्ष के लक्ष्य को कभी भूलते नहीं। धन्य है, इन चरमशरीरी धर्मात्माओं को !

**श्री राम और हनुमान का मिलन** – हनुमान राम की सहायता के लिए तुरंत किष्किंधापुर चले। अन्य कितने ही विद्याधर राजा भी हनुमान के साथ बड़ी सेना लेकर आकाशमार्ग से चले। हनुमान के विमान की ध्वजा में बन्दर का चिह्न शोभता है।

सुग्रीव महाराजा ने नगरी सजा कर हनुमान का स्वागत किया। हनुमान श्री राम के पास आ पहुँचे। एक चरमशरीरी जीव के पास दूसरे

चरमशरीरी धर्मात्मा आ पहुँचे....राम और हनुमान का प्रथमबार मिलन हुआ....दोनों साधर्मी एक-दूसरे को देखकर परम प्रसन्न हुए। श्री राम की गंभीर मुद्रा और अद्‌भुत रूप देखकर पवनपुत्र का चित्त प्रसन्नता से नम्रीभूत हो गया। श्री राम भी अंजना पुत्र को देखते ही प्रसन्नता से उनके पास आकर मिले....।

"अहो, कैसा अद्‌भुत होगा ये दृश्य ! कि राम और हनुमान जैसे दो मोक्षमागी महापुरुष एक-दूसरे से कैसे मिलते होंगे ? वाह रे वाह जैनधर्म ! तेरा साधर्मी वात्सल्य जगत में अजोड़ है। सच्चा सम्बन्ध साधर्मी का।"

सीता के विरह में उदास होने पर भी जिसका पुण्य-प्रताप छिपा रह नहीं सकता – ऐसे श्रीराम का प्रताप देखकर आश्चर्य से युक्त हनुमान कहने लगे – "हे देव ! किसी की प्रशंसा करना हो तो परोक्ष में करना चाहिये, प्रत्यक्ष में नहीं करना चाहिये – ऐसा व्यवहार है, परन्तु आपके गुणों की जो महिमा हमने सुनी थी, उससे भी अधिक गुण आज प्रत्यक्ष देखे। आप ही इस भरत क्षेत्र के स्वामी हो। आपने हमारे ऊपर बड़ा उपकार किया है। हम आपकी क्या सेवा करें ? उपकार करने वालों की सेवा जो नहीं करते, उनके भावों में शुद्धता नहीं होती। जो उपकार भूल कर कृतघ्नी होते हैं, वे दुर्बुद्धि जीव न्याय से विमुख हैं; इसलिए हे राघव ! हमें शरीर छोड़कर भी आपका काम करना पड़े तो भी शीघ्र करेंगे। आप चिन्ता छोड़ो, अब थोड़े ही समय में आप सीता का मुख देखेंगे। मैं अभी लंका जाता हूँ और सीता का संदेश लाता हूँ।"

तब श्रीराम ने अत्यंत प्रीति से एकांत में हनुमान से कहा –

"हे वायुपुत्र ! तुम हमारे परम मित्र हो, सीता को कहना कि – हे महासती ! तेरे वियोग में राम को एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता; तुम महा शीलवंती सती धर्मात्मा अभी परवश में हो, परन्तु धैर्य रखना; वियोग में कहीं तुम प्राण नहीं छोड़ देना। आर्त-रौद्र ध्यान न करके जैनधर्म की ही शरण रखना। पूर्व के पुण्य-पाप के अनुसार संयोग-वियोग तो होते ही हैं।

तुम तो जैनधर्म को जानने वाली हो, अत: आत्मभावना भाना। हम जल्दी से आकर तुम्हें रावण के हाथों से छुड़ा लेंगे।''

– इसप्रकार हनुमान से कहते ही राम का हृदय गद्‌गद् हो गया।

हनुमान ने कहा – ''हे देव ! आपकी आज्ञा के अनुसार मैं सीता माता को कहूँगा और उनका संदेश लेकर मैं शीघ्र ही वापिस आऊँगा; तब तक आप भी धैर्य रखना।''

– इसप्रकार कहकर श्री हनुमान ने श्री राम से विदाई ली और पंच परमेष्ठी के स्मरण पूर्वक आकाशमार्ग से प्रयाण किया। श्री राम आकाशमार्ग से जाते हुए हनुमान को तब तक देखते रहे, जबतक कि वे दृष्टि से ओझल नहीं हो गये।

**हनुमान का लंका की तरफ प्रयाण –** अंजनापुत्र हनुमान आकाशमार्ग से लंका की तरफ जा रहे हैं, उनका चित्त बड़ा प्रसन्न है – ''वाह ! श्रीराम और सीता जैसे साधर्मी धर्मात्माओं की सहायता करने का ये अवसर मिला है। साधर्मी के ऊपर संकट कैसे देखा जा सकता है ? मैं शीघ्र ही ये संकट दूर कर राम-सीता का मिलन कराऊँगा।''

– इसप्रकार सीता के दर्शन के लिए जिसका चित्त उत्सुक है – ऐसे पवनपुत्र हनुमान पवन से भी अधिक वेग से जा रहे हैं....अहो ! ऐसा लगता है कि अपनी जानकी बहन को लेने के लिए मानो भाई भामण्डल ही जा रहा हो ! रास्ते में विमान से महेन्द्रपुरी नगरी दिखी। हनुमान ने अचानक विमान रोका।

(पाठको ! जैनधर्म की कहानियाँ, भाग ४ की बात तुम्हें याद होगी कि हनुमानजी की माता अंजना को उसकी सास ने कलंकित समझकर घर से निकाल दिया था, तब वह अपने पीहर सहारा माँगने आई थी। तब उसे पिता महेन्द्र राजा ने भी कलंकनी समझकर नगर से निकाल दिया था; ये वही नगरी है, उसे देखते ही हनुमान को विचार आया।)

''अरे, मेरे नाना महेन्द्रकुमार ने बिना विचारे तिरस्कार करके मेरी माता को महाकष्ट में डाला था, मेरी माता को वन में जाकर रहना पड़ा

था....वहाँ गुफा में मुनिराज के दर्शन के प्रताप से मेरी माता को आश्वासन मिला था। मेरा जन्म भी वन में ही हुआ था। अरे दुःख के कारण शरण में आई हुई मेरी माता को नहीं रखा – उन्होंने महेन्द्र राजा का गर्व मैं उतारूँ।"

– ऐसा विचार कर हनुमान ने रणभेरी बजाई। अचानक रणभेरी सुनते ही राजा महेन्द्र लश्कर लेकर लड़ने आया, उन्होंने हनुमान के ऊपर बाण चलाये; परन्तु जैसे मुनिवरों को कामबाण नहीं लगते, वैसे ही हनुमान को एक भी बाण नहीं लगा। महेन्द्र राजा ने क्रोध पूर्वक भयंकर विक्रिया करके हनुमान के ऊपर हमला किया, परन्तु हनुमान जरा भी विचलित नहीं हुये। एकाएक अपने रथ से छलाँग मारकर हनुमान राजा महेन्द्र के रथ में कूद पड़े और उन्हें बाहुपाश में पकड़कर अपने रथ में ले आये; जैसे मुनिराज विषय-कषाय को जीत लेते हैं, वैसे ही क्षणमात्र में वीर हनुमान ने महेन्द्र राजा को जीत लिया।

हनुमान की वीरता देखकर महेन्द्र राजा ने कहा –

"हे पुत्र! तेरा प्रताप मैंने जैसा सुना था, वैसा आज प्रत्यक्ष देखा। हमारा अपराध क्षमा करो, तुम चरमशरीरी महाप्रतापी हो, तुमने हमारे कुल को उज्ज्वल किया....हमारे कुल में मानो गुणों का कल्पवृक्ष ही प्रगटा है!" – इसप्रकार बहुत प्रशंसा करके प्रेमपूर्वक उसे छाती से लगा लिया, तथा बारम्बार उसका मस्तक चूमने लगे।

तब हनुमान ने भी हाथ जोड़कर उनसे क्षमा माँगी....महापुरुष बिना कारण वैर नहीं रखते। देखो, क्रोध के स्थान पर क्षणभर में प्रेम उमड़ आया। जीवों के परिणाम एक क्षण में कहाँ से कहाँ पलट जाते हैं। क्रोध जीव का स्वभाव नहीं है – इस कारण वह अधिक काल तक नहीं टिक सकता। जीव का स्वभाव क्षमा है.... ऐसा जानकर हे जीवो! तुम क्षमा धारण करो!

हनुमान ने राजा महेन्द्र से सभी बातें कीं और उन्हें श्री राम की सेवा में जाने को कहकर स्वयं लंकापुरी की तरफ गमन किया।

हनुमान की बात सुनकर राजा महेन्द्र अपने पुत्र एवं रानी सहित, प्रथम तो पुत्री अंजना के पास गये और उसे हनुमान के महा पराक्रम की सभी बात बताई। अंजना तो ये सुनकर तथा अपने माता-पिता एवं भाई के मिलाप से अत्यंत प्रसन्न हुई। इससे भी अधिक प्रसन्नता उसे यह जानकर हुई कि मेरा पुत्र, मेरे ही जैसी एक सती सीता –धर्मात्मा की सहायता करने जा रहा है ! अहो, ये सीता कैसी होगी? एक समय मैं भी वन में थी, उसी प्रकार आज सीता भी राम से दूर रावण के उद्यान में पड़ी है। यद्यपि रावण अति बलवान है, तो भी मेरा पराक्रमी पुत्र हनुमान अवश्य ही सीता के पास पहुँचेगा और उसे छुड़ाकर लायेगा।

वहाँ से राजा महेन्द्र श्री राम की सेवा में किष्किंधानगरी पहुँचे। अहो, देखो तो पुण्य का प्रताप ! कि जिसके कारण भूमिगोचरी मनुष्य की भी बड़े-बड़े विद्याधर राजा और देव सेवा करते हैं, इसलिए शास्त्रकार कहते हैं कि हे जीवो ! तुम पापकार्यों को छोड़कर देव-गुरु-धर्म की सेवा के सत्कार्यों में लगो।

## बीच में एक और घटना

दधिमुख नगरी के बाहर एक घोर वन में दो चारणऋद्धिधारी मुनिराज आठ दिन से ध्यान में खड़े थे। उसी वन में थोड़ी दूर पर तीन राजकुमारियाँ। मनोऽनुगामिनि विद्या साध रही थीं, उन्हें आज बारहवाँ दिन था। मोक्षमार्ग में जैसे वीतरागी तीन रत्न शोभित होते हैं, वैसे ही निर्मल चरित्रवाली ये तीन कन्यायें वन में सुशोभित हो रही थीं। अंगारक नाम का दुष्ट विद्याधर उन कन्याओं पर मोहित होकर उनके साथ विवाह करना चाहता था, परंतु राजकन्याओं के मन में तो श्री राम ही बस रहे थे। अंगारक विद्याधर ने कन्याओं को वश करने हेतु क्रोधपूर्वक वन में आग लगाई। वन में ध्यानस्थ खड़े दो मुनियों एवं तीन कन्याओं के ऊपर अग्नि का घोर उपद्रव हुआ, परन्तु उपद्रवों के बीच भी मुनिराज डिगे नहीं और न डिगीं राजकन्यायें। सब अपनी-अपनी साधना में मस्त थे।

इतने में ऊपर से हनुमान का विमान निकला, मुनियों को आग में

फँसे हुये देखकर तुरन्त ही हनुमान नीचे उतरे; विद्या के बल से घनघोर पानी की वर्षा की। जैसे मुनिराज परम क्षमा द्वारा क्रोधाग्नि को बुझाते हैं, वैसे ही मुनिभक्त हनुमान ने वन की आग बुझा डाली।

इस तरह मुनिवरों का उपसर्ग दूर करके हनुमान उनकी पूजा-स्तुति कर रहे थे। उसी समय तीनों राजकन्यायें वहाँ आ पहुँची और कहने लगीं –

"हे तात ! आपने हमें इस वन की आग से बचाकर बड़ा उपकार किया। हम लोग यहाँ श्रीराम के दर्शनों की इच्छा से विद्या साधते थे, जिसकी सिद्धि में बारह वर्ष से भी अधिक समय लगता, परन्तु ऐसे उपसर्ग के बीच भी हम निर्भय रहे, इससे वह विद्या हमको आज १२वें दिन ही सिद्ध हो गई। हमारे निमित्त से मुनिराज पर उपसर्ग हुआ, परन्तु मुनिराज के प्रताप से हमारी भी रक्षा हो गई। अहो बंधु ! तुम्हारी जिनभक्ति और मुनिभक्ति वास्तव में अद्‌भुत है।"

हनुमान ने उन कन्याओं को श्री राम का परिचय दिया तथा कहा–

"अब तुम्हें श्री राम के दर्शन होंगे और तुम्हारा मनोरथ सफल होगा; निश्चयवंत जीव को उद्यम द्वारा स्वकार्य की सिद्धि होती ही है।"

– ऐसा कहकर हनुमान वहाँ से चल दिये।

अब लवणसमुद्र के बीच स्थित त्रिकुटाचल पर्वत (जिस पर रावण की लंका नगरी है) पर हनुमान आ पहुँचे। वहाँ रावण के मायामयी यंत्र के कारण हनुमान की सेवा वहीं रुक गई। यहाँ हनुमान विचार में पड़ गये – "अरे, ये क्या हुआ ? विमान आगे क्यों नहीं चलता ? क्या नीचे कोई चरमशरीरी मुनिराज विमाजमान हैं ? या कोई भव्य जिनमन्दिर है ? या फिर किसी शत्रु ने विमान रोका है ?"

मंत्री ने खोजकर कहा – "हे स्वामी ! ये तो लंका का मायामयी कोट है; ये माया की पुतली सर्वभक्षी है, उसके मुख में प्रवेश करनेवाला व्यक्ति कभी बाहर निकल नहीं सकता। चारों ओर हजारों फणधर सर्प मुँह फाड़-फाड़कर फण ऊँचा कर-करके भयंकर फुंकार रहे हैं, ऊपर से विष समान अग्नि के फुलिंगों की बरसात हो रही है। दुष्ट मायाचारी रावण की

विद्या के बल द्वारा रचा हुआ यह लंका के चारों तरफ मायामयी कोट मानो सूर्य-चन्द्र से भी ऊँचा है; उसमें बिना विचारे जो प्रवेश करता है, वह मानो अपनी मौत को ही बुलाता है।"

हनुमान ने कहा – "जैसे मुनिवर आत्मध्यान द्वारा माया को नष्ट कर डालते हैं, वैसे ही मैं भी अपनी विद्या द्वारा रावण की इस माया को उखाड़ कर फेंक दूँगा।"

– ऐसा कहकर, हनुमान ने सेना को तो आकाश में ही खड़े रखा और स्वयं मायामयी पुतली के मुँह में प्रवेश कर विद्या द्वारा उसका विदारण कर डाला। जैसे मुनिश्वर शुक्लध्यान के प्रहार द्वारा घनघाति कर्म को भी तोड़ डालते हैं, वैसे ही हनुमान ने गदा के प्रहार द्वारा रावण का गढ़ तोड़ डाला।

जैसे जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करते ही पाप भाग जाते हैं, वैसे ही हनुमान को देखते ही राक्षस भाग गये। हनुमान के चक्र द्वारा कोटपाल का मरण हुआ; इस कारण उसकी पुत्री लंका सुन्दरी अत्यंत क्रोधपूर्वक लड़ने आ गई। अनेक प्रकार की विद्याओं द्वारा दोनों में बहुत समय तक लड़ाई चली। अद्भुत रूप से गर्वित उस लंका सुन्दरी को कोई जीत नहीं सकता था। वह हनुमान के ऊपर जोरदार बाण चलाने लगी, परन्तु अचानक इस कामदेव का अद्भुत रूप देखकर वह लंका सुन्दरी ऐसी मूर्छित हुई कि स्वयं ही कामबाण से घायल हो गई। विह्वल हो उसने बाण के साथ प्रेम की चिट्ठी बाँधकर उसे हनुमान के चरणों में फेंका, मानो बाण के बहाने वह ही हनुमान की शरण में गई.... हनुमान का हृदय भी उस पत्ररूपी बाण से छिद गया। इसप्रकार पुष्पबाण द्वारा ही दोनों ने एक-दूसरे को वश कर लिया।

अरे, संसारी जीवों की विचित्रता तो देखो ! क्षण में रौद्रपरिणाम, क्षण में वीररस, क्षण में एक-दूसरे को मार डालने का तीव्र द्वेष और क्षण में उसके ही ऊपर अत्यंत प्रेम ? उसी प्रकार क्षण में क्रोधरस, क्षण में शांतरस, क्षण में शोक तथा क्षण में हर्ष – ऐसे अनेक परिणामों में जीव

वर्तता है; उसमें वीतरागी शांतरस यही सच्चा रस है, बाकी के सभी रस नीरस हैं....अरस आत्मा का शांतरस चखनेवाले धर्मात्मा ने सारे संसार को नीरस जाना है।

हनुमान ने लंका सुन्दरी को वश करके लंका की तरफ जाने की तैयारी की; उसने लंका सुन्दरी से अन्य बातें भी कीं, तब लंका सुन्दरी ने बताया –

"हे स्वामी ! आप संभल कर जाना; रावण को अब आप पर पहले जैसा स्नेह नहीं रहा। पहले तो आप लंका आते थे, तब पूरा नगर सजाकर आपका स्वागत करते थे; परन्तु अब रावण आप पर नाराज है, इससे वह आपको पकड़ लेगा.... इसलिए सावधान रहना।"

हनुमान ने कहा – "हे देवी ! मैं जाकर उसका अभिप्राय जानूँगा। मुझे जगतप्रसिद्ध सती सीता के दर्शन की भावना जगी है। अरे, रावण जिसका मन सुमेरु पर्वत के समान अचल था, वह भी जिसका रूप देखकर चलित हो गया, वह सती सीता मेरी माता के समान है, उसे मैं देखना चाहता हूँ।"

– ऐसा कहकर हनुमान ने शीघ्र लंकानगरी में प्रवेश किया।

वहाँ हनुमान सबसे पहले विभीषण के पास गये, विभीषण ने उसका सन्मान किया। तब हनुमान ने कहा –

"हे पूज्य ! आप तो धर्मात्मा हो, जिनधर्म के जानकार हो; आपका भाई रावण आधा भरतक्षेत्र का राजा है, वह इसतरह अन्य की स्त्री चुराकर लाये – यह क्या उचित है ? राजा होकर ऐसा अन्याय उसे शोभा नहीं देता। आपके वंश में अनेक महापुरुष मोक्षगामी हुए हैं, उनकी उज्ज्वल कीर्ति में ऐसा कार्य करने से अपयश होगा, इसलिए आप रावण को समझाओ कि सीता को वापिस सौंप दे ?"

तब विभीषण कहते हैं – "बेटा हनुमान ! मैंने अपने भाई को बहुत समझाया, परन्तु वह मानता नहीं। वह सीताजी को जब से लाया है, तब से मेरे से बोलता भी नहीं है, फिर भी मैं उसे जोर देकर पुनः

समझाऊँगा। मुझे भी बहुत दुःख होता है। सीता जबसे यहाँ आई है, तबसे वह निराहार है। आज ११ दिन हो गये, उसने कुछ भी खाया नहीं। अरे, वह पानी भी नहीं पीती; फिर भी विषयांध रावण को दया नहीं आती, उदास सीता प्रमद नाम के वन में अकेली बैठी-बैठी जिनेश्वर देव और राम के नाम का जाप जपकर महा मुश्किल से जी रही है।''

यह सुनते ही हनुमान का कोमल हृदय दया से भर गया; तुरंत ही वह जहाँ सीता विराजती थी, वहाँ आये....सम्यग्दर्शन की धारक महासती सीतादेवी को दूर से देखकर....जैसे जिनवाणी को पाकर भव्य जीव प्रसन्न होते हैं, वैसे ही सीता के दर्शन से हनुमान प्रसन्न हुये। शांतमूर्ति सीता उदासचित्त मुँह से हाथ लगाकर बैठी हैं, बाल बिखरे हुए हैं, आँखें आँसुओं से भरी हैं, शरीर सूख गया है, दुःख में डूबी होने पर भी आत्मतेज से उसकी मुद्रा चमक रही है; उसे देखते ही हनुमान मन ही मन सोचने लगे –

''धन्य माता ! धन्य सीता ! इनके समान दूसरी कोई नारी नहीं, इनका संकट मेरे से देखा नहीं जाता। मैं जल्दी इनको यहाँ से छुड़ाकर श्रीराम से मिलाऊँगा, इसके लिए मुझे मेरे प्राण भी देना पड़ें तो भी दूँगा।''

जीवन में हनुमान ने सीता को प्रथम बार ही देखा था – धर्मात्मा को देखकर उसके अन्तर में वात्सल्य का भाव जागृत हुआ....सीता की एकाकी दशा देखकर वैराग्य भी हुआ। हनुमान विचारते हैं–

''अरे रामचन्द्र जैसे महापुरुष की पटरानी अभी यहाँ लंका के वन में अकेली बैठी है....भले ही अकेली....परन्तु उसकी आत्मानुभूति तो उसके साथ है ना ! अहा, चैतन्य की अनुभूति के समान जीव का साथीदार दूसरा कौन है....कि जो मोक्षपर्यंत साथ दे ? जीव को दुःख में या सुख में, संसार में या मोक्ष में दूसरा कोई साथीदार नहीं। जैसे अपने एकत्व स्वरूप में परिणमते मुनि वन में अकेले शोभा पाते हैं, वैसे ही सीताजी भी अकेली अर्जिका जैसी वहाँ सुशोभित हो रही हैं – ये उपवन भी सीता के प्रताप से प्रफुल्लित लगता है।''

क्षण भर ऐसा विचार कर हनुमान ने रामचन्द्रजी की अंगूठी ऊपर

वृक्ष से सीता की गोद में डाली। अचानक राम की मुद्रा देखते ही सीताजी *तो आश्चर्यचकित हो गई।*

"अरे, ये अँगूठी कहाँ से ? जरूर कोई सत्पुरुष मेरे स्वामी का संदेशा लेकर यहाँ आ पहुँचा है !"

– ऐसे विचार से सीता के मुख पर प्रसन्नता छा गई। हमेशा उदास रहती सीता को एकाएक प्रसन्न देखकर रावण की दूतियाँ एकदम खुश होकर रावण के पास जाकर कहने लगीं –

"हे देव ! आज सीता प्रसन्न हो गई है।"

रावण ने उन स्त्रियों को बहुत इनाम दिया; उसने तुरन्त ही मंदोदरी आदि रानियों को सीता के पास उसे समझाने भेजा।

तब मंदोदरी सीता के पा आकर कहने लगी – "हे बाला ! तू आज प्रसन्न हुई ये अच्छा हुआ। अब तू रावण को अपना स्वामी अंगीकार कर और उसके साथ इन्द्राणी जैसा सुख भोग।"

यह सुनते ही सीता ने क्रोध से कहा – "अरी पगली ! ये तू क्या बकती है ? तू अपनी बकवास बंद कर ! मैं कहीं रावण के ऊपर प्रसन्न नहीं हुई हूँ; आज तो मेरे स्वामी का समाचार आया है, मेरे स्वामी कुशल हैं – ये जान कर मुझे हर्ष हुआ है।"

तब मंदोदरी ने कहा – "अरे सीता ! यहाँ लंका में राम का समाचार कैसा ? मुझे लगता है कि तू ११ दिन से भूखी है – इससे तुझे वायु का प्रकोप हो गया है, इसलिए तू ऐसा बोलती है।"

सीता ने हाथ में राम की अंगूठी लेकर पुकार लगायी –

"हे भाई ! मैं सीता इस लंका के भयानक वन में पड़ी हूँ, महा वात्सल्यधारक मेरे भाई समान तुम कोई उत्तम जीव मेरे स्वामी की मुद्रिका लेकर यहाँ आये हो, अतः मुझे प्रगट दर्शन देने की कृपा करो।"

श्री राम के समाचार से, जो हर्ष पावे जानकी।
उस ही तरह भव्यजीव को, जिनदेव के दर्शन से ही॥

कलिकाल में जिनदेव का, दर्शन जीवन आधार है।
पायेगा जो शुद्धभाव से, तिर जायेगा संसार से ॥
आ पहुँचे हैं – सीता के भाई हनुमान !

सीता की पुकार सुनते ही तुरन्त ही वृक्ष पर से छलाँग मारकर हनुमान प्रगट हुए और सन्मुख आकर सीता को नमस्कार किया। अहा, सीता के धर्म-भाई आये ! जैसे भाई भामण्डल सीता के पास आये, वैसे ही हनुमान सीता के समीप आये....मानो भाई ! अपनी प्यारी बहन को ही लेने आया हो ? ऐसे निर्दोष भाई-बहन का मिलन मंदोदरी भी आश्चर्य से देख रही थी। महाप्रतापी वज्रअंगधारी हनुमान निर्भयता से सीता के सन्मुख खड़े हैं। प्रथम उसने अपनी पहचान दी –

"मैं अंजना का पुत्र हनुमान, पवन मेरे पिता, रामचन्द्रजी का सेवक, सीता माता को नमस्कार करता हूँ। श्री राम ने मुझे यहाँ भेजा है। हे देवी ! राम-लक्ष्मण कुशल हैं, स्वर्ग जैसे महल में रहते हैं, परन्तु तुम्हारे विरह में उन्हें कहीं चैन नहीं पड़ती। जैसे मुनिराज दिन-रात आत्मा को ध्याते हैं, वैसे ही राम दिन-रात तुम्हारा ध्यान करते हैं और तुम्हारे मिलने की आशा से ही जी रहे हैं।"

हनुमानजी से कुशल समाचार की बातें सुनकर सीता आनन्दित हुई और बोली – "हे भाई ! आपने ऐसे उत्तम समाचार मुझे दिये, इससे मुझे अत्यन्त खुश हुई है; परन्तु अभी मेरे पास ऐसा कुछ नहीं कि मैं तुझे इनाम दे सकूँ !"

तब हनुमान ने कहा – "हे पूज्य देवी ! आपके दर्शन से ही मुझे महान लाभ हुआ है। तुम्हारे जैसी उत्तम धर्मबहन मिली, इससे उत्तम दूसरा क्या है ?"

सीता ने सभी कुछ पूछा – "हे भाई ! चारों ओर समुद्र से घिरी हुई इस लंका नगरी में तुम किसप्रकार आये ! क्या वास्तव में तुमने राम-लक्ष्मण को देखा है ? तुम्हारी उनके साथ मित्रता किसप्रकार हुई। कदाचित् मेरे वियोग में राम ने देह छोड़ा हो और उनकी अंगूठी पड़ी रह

गई हो....वह लेकर तुम आये हो और ऐसा तो नहीं है कि मुझे रिझाने के लिए ये रावण का ही कोई मायाजाल हो।"

– इस तरह शंका-आशंका करके सीता अनेक प्रश्न पूछने लगी।

तब हनुमान ने सीता से अन्य सभी बातें कीं। जटायुपक्षी की बात बतायी, रत्नजटी विद्याधर की बात बतायी, इसतरह सर्वप्रकार से सीता को विश्वास उत्पन्न कराया और कहा –

"हे बहन ! तुम मुझे अपना भाई ही समझो, तुम धैर्य रखना, लंका का राजा रावण सत्यवादी है, दयावान है, मैं उसे समझाऊँगा, वह मेरा वचन मानकर तुम्हें शीघ्र राम के पास वापिस भेज देंगे अथवा राम-लक्ष्मण स्वयं आकर रावण को मारकर तुम्हें ले जायेंगे।

ये सब सुनकर मंदोदरी कहने लगी – "अरे हनुमान ! तू तो हमारा भानजा जमाई, लंका का राजा तुझे अपने भाई समान गिनता है। अनेक बार तुमने युद्ध जिताने में उनकी मदद की है। तू आकाशगामी विद्याधर होते हुए भी भूमि-गोचरी राम का दूत बनकर आया है ? रावण का पक्ष छोड़कर तूने राम का पक्ष लिया – ये तुझे क्या हो गया ?"

तब हनुमान कहते हैं – "अरे माता ! तू राजा मय की पुत्री, महासती और रावण की पटनारी; फिर भी ऐसे दुष्ट कार्य में रावण की दूती बनकर आई है – ये तुझे शोभा नहीं देता– ऐसे पापकार्य से रावण को रोकने के बदल तू उल्टी उसकी अनुमोदना एवं सहयोग क्यों करती है ? तेरा स्वामी विषयरूपी विष-भक्षण से मरण-सन्मुख जा रहा है, उसे तू क्यों नहीं रोकती ? क्या ऐसा अकार्य तुझे शोभा देता है ? तू राजा रावण की 'महिषी' (पटरानी) है, या सचमुच 'महिषी' (बड़ी भैंस) है ?"

अपना अपमान होने से मंदोदरी क्रोध में आकर कहने लगी – "अरे हनुमान ! तुम तो अभी बालक जैसे हो और तुम राम के दूत बनकर लंका में आये – ये यदि लंकापति जान लेगा तो तुझे मार डालेगा, इसलिए वन में भटकने वाले राम की सेवा छोड़कर तू लंकापति की सेवा कर।"

तब सीता कहने लगी – "रे दुष्ट ! तेरा पति पापी है, उसका मरण

अब निकट आया है, मेरे राम-लक्ष्मण के अद्‌भुत पराक्रम की अभी तुझे खबर नहीं। जब समुद्र उलांघकर वे यहाँ आयेंगे, तेरे पति को मार डालेंगे तब तू विधवा हो जायेगी।''

– ऐसे अनिष्ट वचन सुनते ही मंदोदरी आदि १८,००० रानियाँ सीता को मारने दौड़ीं, परन्तु वीर हनुमान ने बीच में आकर उन सबको भगा डाला। जैसे वैद्य रोग को दूर करता है, वैसे ही वीर हनुमान ने उन रानियों को भगाकर सीता का भय दूर किया। उन रानियों के भाग जाने के बाद हनुमान ने सीता से विनती की –

''हे बहन सीता ! अब तुम आहार-जल ग्रहण करो – ये सम्पूर्ण पृथ्वी राम की ही है – ऐसा समझो। राम के कुशल समाचार सुनने की तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूरी हो गई है, इसलिए हे बहन ! अब तुम भोजन करो; अपने हाथों से ही मैं तुम्हें पारणा कराऊँगा।''

## हनुमान द्वारा सीता का पारणा

विचक्षण बुद्धि महासती सीता ने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी हुई जानकर भोजन के लिए 'हाँ' कर दी....थोड़ी देर में ही सोने की थाली में शुद्ध भोजन आ गया। सीता ने समीपवर्ती साधर्मियों को निमंत्रण दिया, हनुमान के प्रति भाई जैसी प्रीति की, पंच परमेष्ठी के स्मरण पूर्वक मुनि वगैरह को

आहार दान देने की अभिलाषा सहित, श्री राम का हृदय में चिंतन कर सीता भोजन लेने बैठी। हनुमान ने पास में ही बैठकर अत्यंत वात्सल्य भाव से सीता को भोजन कराया....अहा, लंका नगरी में ११ दिन की उपवासी बहन सीता को आज उसका धर्म-भाई प्रेम से भोजन करा रहा है। बहन को खिलाने से हनुमान के हर्ष का पार नहीं। सीता ने भी भाई समान हनुमान को भी वहाँ पर भोजन कराया....

वाह रे वाह, धर्म वात्सल्यवान साधर्मी धर्मात्मा का प्रेम देखकर जगत के सब दुख भूल जाते हैं। वाह रे वाह धर्म का वात्सल्य !

भोजन करने के बाद भाई-बहन ने उत्तम तत्त्वचर्चा की। स्वानुभूति वाले दोनों भाई-बहनों द्वारा की गई चैतन्यतत्त्व की चर्चा अद्भुत थी।

हनुमान ने कहा – "बहन सीता ! पूर्व में किसी मुनिराज का तुमने अवर्णवाद किया होगा, इसी कारण ऐसा संकट तुम्हारे ऊपर आया; परन्तु अब जैनशासन के प्रताप से तुम्हारा संकट दूर होगा, क्योंकि देव-शास्त्र-गुरु की अपार शक्ति तुम्हारे जीवन में भरी है।"

सीता कहती है – "हाँ भाई, जिनके प्रताप से आत्मा ने स्वानुभूति पायी, उनके उपकार की क्या बात ? संसार की कैसी भी विकट परिस्थितियों में भी स्वानुभूति के प्रताप से जीव को शांति रहती है।"

हनुमान – "वाह बहन ! तुम ऐसी स्वानुभूति से शोभा पा रही हो, तुम्हारे मुख से स्वानुभूति की चर्चा सुनकर मुझे बहुत आनन्द होता है।"

सीता – "भाई, इस विकट वन में तुम मुझे साधर्मी भाई के रूप में मिले। तुम चैतन्य की स्वानुभूति युक्त हो, मैं तुमसे मिलकर अपने को धन्य मानती हूँ।"

हनुमान – "अरे, रावण जैसा राजा जैनधर्म का जानकार भी अभी विषयांध विवेकशून्य होकर दुष्ट कार्य में वर्त रहा है !"

सीता – "वास्तव में जीव का स्वभाव कोई अलौकिक है; जब वह जागता है, तब परभावों को तोड़कर मोक्ष साधने में देर नहीं लगती।"

पाठको ! सीता और हनुमान की ये चर्चा सुनकर हमें रावण के ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए, धीरज से अपने ज्ञान को दीर्घदृष्टि प्रदान कर उनके स्वभाव एवं आगामी काल में होनेवाली पूर्ण शुद्ध पर्याय पर दृष्टि डालनी चाहिए। भविष्य में जब सीता का जीव चक्रवर्ती होगा तब यही रावण का जीव उसका पुत्र होगा और लक्ष्मण का जीव रावण का भाई होगा, अर्थात् सीता का दूसरा पुत्र होगा अब और जरा ज्ञान को आगे ले जाकर देखें तो वही रावण का जीव जब तीर्थंकर होगा, तब सीता का जीव उनका गणधर होगा। बोलो, अब तुम किस पर द्वेष करोगे ? जैसे रावण का जीव कुशीलादि रूप विराधना के भावों को छोड़कर आराधना के भाव प्राप्त कर मोक्ष पायेगा, वैसे ही तुम भी आत्मा की आराधना में लगकर मोक्ष पथ में प्रयाण करो।

इस तरह सीता के साथ चर्चा के बाद हनुमान जाने के लिये तैयार हुए और सीता से कहा – "हे देवी ! चलो हमारे साथ, तुम्हें श्री राम के पास ले चलूँ।"

परन्तु सीता ने कहा –

"रावण तो कायरों की तरह चोरी-चोरी मुझे उठाकर लाया था, परन्तु हे वीर ! राम-लक्ष्मण तो स्वयं के पराक्रम से रावण को हरा कर मुझे ले जायेंगे, इसलिए चोरी से छिपकर भागना उचित नहीं। भाई ! तुम जाकर राम को मेरे सब समाचार सुनाना और कहना कि मुझे लेने जल्दी आवें और तुम अपनी माता अंजना को मेरी तरफ से योग्य विनय कहना।"

"हे हनुमान ! तुमने यहाँ आकर मेरे ऊपर भाईवत् उपकार किया है। वन में हमने गुप्ति-सुगुप्ति आदि मुनिराजों को आहार दिया था, देशभूषण-कुलभूषण मुनिवरों का उपसर्ग निवारण करके भक्ति की थी – ये सभी प्रसंगों को याद करके राम को मेरा कुशल-समाचार कहना और मेरी ये निशानी राम को देना...."

– ऐसा कहकर गद्‌गद् होती हुई सीता ने सिर का चूड़ामणि

उतारकर हनुमान के हाथ में दिया। तब सीता रोती-रोती कहने लगी –

"भाई हनुमान, अब तुम जल्दी यहाँ से विदाई लो; क्योंकि वहाँ राम राह देखते होंगे और यहाँ रावण को खबर पड़ते ही वह तुम्हें पकड़ने का उद्यम करेगा, इसलिए अब विलम्ब करना उचित नहीं....।"

"हे माता ! राम-लक्ष्मण सहित हम शीघ्र ही यहाँ आकर आपको छुड़ायेंगे; तुम धैर्य रखना, अपने को तो सदा पंच परमेष्ठी का शरण है।"

– इसप्रकार हनुमान ने सीता को धैर्य बँधाकर वहाँ से विदाई ली।

राम की अँगूठी सीता ने अपनी अंगुली में पहनी, उस अंगूठी के स्पर्श से उसे राम के साक्षात् मिलन जैसा ही सुख हुआ, जैसे सम्यक्त्व के स्पर्श से भव्यजीव को मोक्ष जैसा सुख होता है।

सीता के मिलन से हनुमान को अपने जीवन में एक महान कार्य करने का सन्तोष हुआ। अहो, संकट में पड़े हुए साधर्मी की सहायता के लिए कुदरत ही जब तैयार हो, तब धर्मात्मा से कैसे रहा जा सकता है ? संकट के समय एक साधर्मी-सती-धर्मात्मा की सेवा करने से उसका हृदय धर्मप्रेम से भर गया। उसे अपनी अंजना माता के जीवन के प्रसंग एक के बाद एक नजरों के सामने आने लगे।

हनुमान के अद्भुत रूप को देखकर लंका की स्त्रियाँ आश्चर्य करने लगीं – "अरे ! ये कामदेव जैसा पुरुष कौन है ? कहाँ से आया है? – ऐसा प्रतापी पुरुष लंका में कहाँ है ?"

दूसरी तरफ हनुमान द्वारा अपमानित हुई रावण की स्त्रियाँ रोती-रोती रावण के पास गईं और हनुमान की सभी बातें कहीं, यह सुनते ही रावण ने क्रोधित होकर हनुमान को पकड़ लाने के लिए सेना भेजी, परन्तु अकेले हनुमान ने ही सेना को भगा डाला और लंका नगरी में हा-हाकार मचा दिया। अंत में इन्द्रजीत ने आकर हनुमान को पकड़ लिया और बाँधकर रावण के पास लाया। हनुमान को देखते ही आश्चर्ययुक्त सभाजन कहने लगे –

"अहो हनुमान ! तुम तो रावण के खास माने हुए सुभट ! रावण जैसे महाराजा की सेवा छोड़कर वन में भटकने वाले राम की सेवा करना तुम्हें क्या सूझा ? तुम केशरीसिंह के बच्चे होकर सियार के झुण्ड में क्यों चले गये ?"

हनुमान ने कहा – "रावण परस्त्री-लम्पट होकर दुष्ट कार्य कर रहा है, महासती सीता को उसने छेड़ा है, इस कारण उसका विनाश काल निकट आया है। राम-लक्ष्मण के पराक्रम की उसे खबर नहीं, थोड़े दिनों में ही वे सेना सहित यहाँ आ पहुँचेंगे और रावण को मारकर सीता को ले जायेंगे। आश्चर्य की बात यह है कि इस सभा में बैठने वाले तुम सब न्यायवान और महा बुद्धिमान होने पर भी रावण को इस दुष्ट कार्य करने से रोकते क्यों नहीं ?"

हे महाराज रावण ! अभी भी यदि तुम्हें सद्‌बुद्धि सूझे तो राम के आश्रय में जाओ और मानसहित सीता को वापिस सौंप दो। तुम्हारे महान कुल में तो बहुत प्रतापवंत राजा मोक्षगामी हुए हैं – ऐसे महान कुल में पाप द्वारा तुम कलंक क्यों लगाते हो ? तुम्हारे इस नीच कार्य से तो राक्षसवंश का नाश हो जायेगा, इसलिए अब भी चेत जाओ और सीता को वापिस सौंपकर राम की शरण लो। ये बात करने के लिये ही मैं लंका आया हूँ।

हनुमान की बात सुनते ही रावण ने क्रोधित होकर कहा – "अरे, ये हनुमान भूमिगोचरी का (राम का) दूत बनकर आया है, इसे मरण का डर नहीं; इसे बाँधकर, अपमानित करके नगरी में घुमाओ।"

इसप्रकार रावण की आज्ञा होने से सेवक जन हनुमान को बाँधकर नगर में घुमा रहे थे....कि हनुमान ने एकदम छलाँग मारकर बंधन तोड़ डाले। जैसे शुक्लध्यान द्वारा मुनिराज मोह-बंधन तोड़ कर मोक्ष में जाते हैं, वैसे ही विद्या द्वारा हनुमान बंधन तोड़कर आकाश में उछले....और पैरों के वज्र-प्रहारों द्वारा रावण के महलों तक को तोड़ डाला। जैसे वज्र

द्वारा पर्वत टूट जाते हैं, वैसे ही हनुमान के वज्र प्रहार द्वारा लंका नगरी तितर-बितर हो गई।

"हनुमान को रावण ने बाँध लिया"– यह जानकर सीता रुदन कर रही थी कि इतने में आकाश में हनुमान को उड़ते देखा, इससे प्रसन्न होकर दूर से ही उसे आशीष देने लगी। पुण्य-प्रतापी हनुमान विद्या के बल से आकाश में उड़ते-उड़ते शीघ्र ही किष्किंधापुरी में राम के समीप आ पहुँचे।

"सीता का पता लगाकर हनुमान आ पहुँचे" – यह जानकर किष्किंधानगरी में हर्ष फैल गया। सीता की चिन्ता में जिनका मुख मुरझा गया है – ऐसे श्रीराम हनुमान से सीता की बात सुनकर प्रसन्न हुए। राम की आँखों में आँसू उमड़ पड़े। हनुमान को देखते ही उन्हें पोंछकर पूछा –

"हे मित्र ? सचमुच मुझे कहो, क्या मेरी सीता जीवित है ?"

हनुमान ने कहा – "हाँ देव ! वह जीवित है, आपके ध्यान में दिन बिता रही है। निशानी के रूप में उसने यह चूड़ामणि मुझे दिया है। आपके विरह में उसकी आँखों में तो मानो चौमासा ही (वर्षा ऋतु) लगा है, किसी के साथ बात भी नहीं करती। रावण के सामने तो देखती भी नहीं, ग्यारह दिन से उसने खाया-पिया भी न था; आपके कुशल समाचार सुनने के बाद आज ही उसने भोजन किया, इसलिए अब उन्हें वापिस लाने का शीघ्र उद्यम करो !"

यह सुनकर राम-लक्ष्मण ने बड़ी सेना सहित (कार्तिक वदी पंचमी को) लंका की तरफ प्रस्थान किया। रास्ते में अनेक शुभ शगुन हुए।

राम की सेना लंका के निकट जब पहुँची, तब तो लंका में खलबलाहट मच गई। भाई विभीषण ने रावण को बहुत समझाया, परन्तु वह माना नहीं और राम-लक्ष्मण के साथ लड़ने को तैयार हो गया। धर्मात्मा विभीषण से अपने भाई का अन्याय देखा न गया, इससे वह रावण को छोड़कर श्रीराम की शरण में चला गया।

रावण और राम-लक्ष्मण के बीच होने वाले महायुद्ध में हनुमान ने बड़ा पराक्रम करके राक्षसवंशी अनेक राजाओं को हराया। देखो, जीव के परिणामों की विचित्रता ! जिस हनुमान ने पहले युद्ध में विजय दिलाने के लिए मदद करके रावण को बचाया था, वही हनुमान अभी रावण से स्वयं लड़ रहा है। लड़ाई में रावण की शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण एकदम मूर्छित हो गये....तब हनुमान लंका से अयोध्या आये और विशल्या कुंवरी को विमान में बैठाकर लंका ले आये। विशल्या के निकट पहुँचते ही लक्ष्मण के शरीर में चेतना आने लगी, रावण द्वारा मारी हुई शक्ति दूर हो गई। यही विशल्या बाद में लक्ष्मण की पटरानी बनी।

रावण के महल में शांतिनाथ भगवान का जिनालय था। उसकी शोभा अद्भुत थी। अपने भाई तथा पुत्र पकड़े गये हैं और लक्ष्मण अच्छा हो गया है – यह जानकर रावण को युद्ध में अपनी विजय के विषय में चिंता हो गई; इससे वह शांतिनाथ भगवान के मंदिर में बैठकर बहुरूपिणी विद्या साधने लगा। फागुन मास की अष्टाह्निका आई; रावण की आज्ञा से लंका के लोगों ने इन महान दिनों में सिद्धचक्र मंडल पूजन की तथा आठ दिन आरम्भ छोड़कर युद्ध बंद रखा। सभी व्रत-उपवास तथा जिन-पूजा में तत्पर हुए, राजा रावण विद्या साधने के लिये लड़ाई की चिन्ता छोड़कर, धैर्य पूर्वक प्रभु सन्मुख अद्भुत पूजा करने लगे।

इस समय राम की छावनी में वानरवंशी राजाओं ने विचार किया कि पूजा में उपद्रव करके रावण को क्रोध उत्पन्न करो, जिससे उसे विद्या सिद्ध न हो; क्योंकि क्रोध द्वारा विद्या सिद्ध नहीं होती। तथा अभी लंका जीत लेने का समय है, क्योंकि रावण विद्या साधने बैठा होने से अभी वह लड़ेगा नहीं, परन्तु राम ने ऐसा करने की मनाई कर दी। अरे, रावण जिन-मंदिर में विद्या साधने बैठा है, उसको उपद्रव कैसे करना ? ऐसी अन्याय की प्रवृत्ति सज्जनों को शोभा नहीं देती।

विद्या साधकर रावण भयानक युद्ध के लिये तैयार हुआ, मंदोदरी

ने युद्ध नहीं करने और सीता को वापिस सौंप देने के लिए बहुत समझाया, परन्तु रावण नहीं माना, युद्ध में लक्ष्मण ने रावण को थका दिया। अंत में रावण ने चक्र छोड़ा, परन्तु उसी चक्र द्वारा लक्ष्मण ने रावण का शिर छेद डाला। इस युद्ध में भी हनुमान ने बहुत पराक्रम दिखाया।

यद्यपि राम और हनुमान जैसे धर्मात्माओं को युद्ध करना जरा भी प्रिय नहीं था, परन्तु राज्य-भोग के बीच में रहने वाले धर्मात्माओं की ऐसी कषाय परिणति सर्वथा नष्ट न होने से, सीता को वापिस लेने के लिये ऐसा युद्ध करना पड़ा। रावण की मृत्यु होते ही युद्ध बंद हुआ। राम ने मंदोदरी वगैरह को धीरज बँधाई, रावण के अंतिम संस्कार कराये तथा इन्द्रजीत, कुंभकर्ण, मेघनाथ वगैरह को मुक्त किया....सत्पुरुष बैर को कभी खींचते नहीं।

एक तरफ युद्ध पूरा हुआ और दूसरी तरफ उसी दिन अनंतवीर्य केवली ५६००० मुनियों के संघ सहित लंका में पधारे और उसी समय दूसरे द्वीप में जन्मे एक तीर्थंकर का जन्माभिषेक करके देव लंका में अनंतवीर्य केवली के दर्शन करने आये और केवलज्ञान का महान उत्सव किया। भगवान ने संसार की चारों गतियों के दु:खों का वर्णन करके मोक्ष सुख को साधने का उपदेश दिया। अहो, हितकारी मधुर वाणी में उनका धर्मोपदेश सुनकर रावण के भाई कुंभकर्ण तथा इन्द्रजीत आदि पुत्रों ने तथा मंदोदरी आदि रानियों ने संसार छोड़कर दीक्षा ले ली। उस दिन मंदोदरी के साथ ४८००० दूसरी स्त्रियाँ अर्जिका हुईं। वाह, कैसा धर्मकाल !

श्री राम-लक्ष्मण ने लंका में प्रवेश किया। राम और सीता का मिलाप हुआ। जैसे अनुभूति में सम्यक्त्व के साथ शांति का मिलन होने से आत्माराम आनंदित हुआ। वैसे ही राम और सीता का मिलन होने से दोनों के नेत्रों में से आनंदमय आँसू झरने लगे। देव भी इस दृश्य को देखकर प्रसन्न हुए। धन्य सती सीता ! धन्य तेरा शील ! और धन्य तेरा धैर्य !

लक्ष्मण ने आकर भवसागर से तरने वाली और मोक्ष की साधिका

– ऐसी सती सीता को वंदन किया। भाई भामण्डल भी अपनी बहन को देखकर आनन्दित हुआ और जब हनुमान ने आकर सीता को वंदन किया, तब अत्यंत प्रसन्नता से सीता ने कहा –

"अहो, वीर ! तुम तो हमारे धर्म के भाई हो। तुम्हीं ने यहाँ आकर मुझे श्री राम का संदेश देकर जीवित किया था। भाई हो तो ऐसा हो !"

इसप्रकार सीताजी ने हनुमान के प्रति अति वात्सल्य बताया। वाह साधर्मी प्रेम ! तेरी महिमा तो सगे भाई-बहन से भी अधिक है।

सीता सहित श्री राम, रावण के महल में शांतिनाथ प्रभुजी के मंदिर में आये। प्रभु का दर्शन कर शांतिचित्त से ध्यान किया और सामायिक की। विविध प्रकार से शांतिनाथ जिनेन्द्र की स्तुति की –

"अहो प्रभो ? आप राग-द्वेष रहित परम शान्तदशा को प्राप्त हो, जिसमें परभावों का आश्रय नहीं, केवल निजभाव का ही आश्रय है – ऐसी शिवपुरी आपने साथ ली है।"

राम के साथ में देवी जानकी (सीता) भी भावभीने चित्त से वीणा जैसे मधुर स्वर से प्रभु की स्तुति करने लगी। लक्ष्मण, विशल्या, हनुमान, भामण्डल वगैरह भी खूब आनन्द से जिन-भक्ति में भाग लेने लगे और मोर के समान नाच उठे ?

अहो, रावण की लंका में, राम-हनुमान जैसे चरमशरीरी जीवों द्वारा शांतिनाथ भगवान की अद्भुत भक्ति का ये प्रसंग देखकर, जिनमहिमा से अभिभूत होकर अनेक भव्यजीवों ने सम्यक्त्व प्राप्त किया। वास्तव में जीवों को एक जैनधर्म ही शरण और शांति देने वाला है। धन्य है जैनधर्म ! और धन्य हैं इसके सेवक !!

लंका में कुछ समय रहकर श्री राम-लक्ष्मण-सीमा वगैरह सभी अयोध्यापुरी आये। हनुमान वगैरह भी साथ ही थे। अयोध्या नगरी में आनन्द-आनन्द छा गया। थोड़े दिनों बाद हनुमानजी ने अपनी नगरी को जाने के लिए विदाई माँगते हुये श्री राम से कहा –

"हे राम ! आप हमारे परम मित्र हो, आप का संग छोड़ना मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता; परन्तु हे देव ! जैसे आपके विरह में कौशल्या माता बेचैन थी; वैसे ही मेरी माता अंजना भी मेरे विरह में बेचैन होंगी और प्रतिदिन मुझे याद करती होंगी, इसलिए मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।"

सीता ने कहा – "बन्धु हनुमान ! तुम मेरे भाई हो....लंका में रावण के वन के बीच आकर तुमने मुझे रघुवीर के कुशल समाचार दिये थे और ११ दिन के उपवास के पारने में मुझे भोजन कराया था। तबसे तुम मेरे धर्मभाई बने हो। मैंने तुम्हारी अंजना माता को कभी देखा नहीं। मैं अंजना माता को अपनी नजरों से देखना चाहती हूँ; इसलिए मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगी।"

हनुमान ने कहा – "वाह बहन ! तुम्हारे जैसी सती धर्मात्मा हमारे घर में पधारे....ये तो महाभाग्य की बात है। माँ अंजना आपको देखकर अति ही प्रसन्न होंगी।"

## दो सखी : सीता और अंजना का मिलन

इसप्रकार हनुमान सीताजी को साथ में लेकर कर्णकुंडलनगरी पहुँचे। सीताजी का भव्य सम्मान किया गया। अंजना माता को देखते ही सीता उससे उसकी पुत्री के समान गले लग गयी। हनुमान ने भी माता को वंदन करके कहा –

"माता ! ये महासती सीताजी अयोध्या की राजरानी और मेरी धर्म बहन हैं।"

अंजना ने कहा – "वाह बेटी सीता ! तुझे देखकर बहुत आनन्द हुआ – ऐसा कहती हुई अंजना ने सीता और हनुमान दोनों पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। सभी एक दूसरे से मिलकर अत्यंत प्रसन्न हुए।"

सीता ने कहा – "माँ, आप मेरी भी माता हो। यह हनुमान मेरा धर्म भाई है; इसने मेरे ऊपर बहुत उपकार किया है।"

अंजना ने कहा – "बेटी सीता ! साधर्मी भाई-बहन संकट के समय में एक-दूसरे की सहायता करें, इसमें क्या आश्चर्य है ? उसमें भी हनुमान का हृदय तो अति कोमल है; वह स्वयं वन में जन्मा है ना; अतः किसी का दुःख देख नहीं सकता, इसलिए सभी इसे 'पर-दुःख भंजक' कहते हैं।"

सीता तो हनुमान के गुनगान सुनती-सुनती अघाती भी नहीं थी। भाई की प्रशंसा बहन को आनंद उपजावे – इसमें क्या आश्चर्य है ?

अंजना कहती है – "हे देवी सीता ! तू भी धर्मात्मा है, तेरा शील जगत में प्रसिद्ध है; तेरे जैसी गुणवान धर्मात्मा बहन हनुमान को मिली, ये तो प्रशंसनीय है। धर्मात्मा भाई-बहन की ऐसी सरस जोड़ी देखकर मेरा हृदय शांति पाता है।"

सीता को यहाँ बहुत अच्छा लगता है, अयोध्या नगरी की तो याद भी नहीं आती। अंजना के साथ बारम्बार आनन्द से धर्म चर्चा करती है। दोनों माँ-बेटी का हृदय दो सखियों के समान एक-दूसरे के साथ खूब हिल-मिल गया है। सीता और अंजना, अंजना और सीता.... दोनों ने वनवास भुगता है, दोनों के जीवन में चित्र-विचित्र प्रसंग बने हैं, दोनों चरमशरीरी पुत्रों की माता हैं, दोनों सखी जिनधर्म की परम भक्त हैं, दोनों सखियाँ महान सती धर्मात्मा और आत्मा को जानने वाली हैं।

(वाचक ! ऐसी महान दोनों सखियों ने कैसी मजे की धर्म चर्चा की होगी – यह जानने की तुम्हें भी लालसा होती होगी। तो चलो ! हम उसका थोड़ा स्वाद चख लें।)

## सीता-अंजना की धर्म चर्चा

सीता – "माँ अंजना ! अपना जैनधर्म कैसा महान है ! संसार में संकट की हर परिस्थिति में जैनधर्म और सम्यग्दर्शन अपने को परम शरण रूप होता है।"

अंजना – "हाँ बेटी सीता ! जीवन में सारभूत यही है। एक तो असारता से भरा हुआ ये संसार और उसमें भी अपना (स्त्रियों का) जीवन....इसमें तो पद-पद पर कैसी-कैसी पराधीनता है ! फिर भी ऐसी स्त्री पर्याय में अपने को ऐसे जैनधर्म की और सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई, ये भी अपनी निकटभव्यता और परम सद्भाग्य है।"

सीता – "अहा, माँ ! आज आप जैसी धर्मात्मा माता के मिलन से मुझे जो परम आह्लाद हुआ है, उसकी क्या बात करूँ ! चैतन्य की अद्भुतता और साधर्मी धर्मात्मा का संग, जगत के सब दुखों को भुला देते हैं और आत्मा का महान आनन्द देते हैं। माता, वन में आपके साथ आपकी सखी वसंतमाला रहती थी, वह कहाँ है ?"

अंजना – "देवी ! उसने तो बालक हनुमान को उसके पिता को सौंपकर तुरन्त वैराग्यपूर्वक दीक्षा ले ली थी। मेरा वनवास देखकर उसे संसारी जीवन से एकदम विरक्तता आ गई थी। हे सीता ! मुझे भी उसके साथ ही दीक्षा लेने की परम उत्कंठा थी, परंतु इस हनुमान के स्नेहरूपी बंधन को मैं तोड़ न सकी। लेकिन अब मैंने निर्णय किया है कि! जब तुम दीक्षा लेकर अर्जिका बनोगी, तब मैं भी संसार का स्नेह-बंधन तोड़कर जरूर दीक्षा लूँगी और अर्जिका का जीवन जीकर इस तुच्छ स्त्री पर्याय का सदा के लिए अंत करूँगी।"

सीता – "वाह माता ! आपकी भावना अलौकिक है। अभी भी आपका जीवन संसार से विरक्त ही है। मैं भी उस धन्य घड़ी की राह देख रही हूँ कि जब संसार का स्नेह छोड़कर अर्जिका बनूँ !"

अंजना – "देवी ! धन्य है तुम्हारी भावना ! हम स्त्री पर्याय में केवलज्ञान और मुनिपद तो नहीं ले सकते, फिर भी सम्यग्दर्शन के प्रताप से हम भी पंच परमेष्ठी के मोक्ष-पंथ में चल रहे हैं !"

सीता – "हाँ माता ! सम्यग्दर्शन भी कैसी महान अलौकिक वस्तु है ! सम्यक्त्व के साथ आठ अंगों से अपना जीवन कैसा शोभ रहा है ?"

अंजना – "बेटी ! सम्यक्त्व होने पर भी संसार के चित्र-विचित्र प्रसंगों में अनेक प्रकार के संक्लेश भाव आ जाते हैं, उससे भी पार होकर चैतन्य की शांति में लीन हो जाऊँ – ऐसी ही अब भावना है।"

सीता – "हाँ, माता ! अब ऐसा प्रसंग बहुत दूर नहीं, अर्जिका होने की आपकी भावना जल्दी पूरी होगी।"

ऐसी आनन्द पूर्वक चर्चा-वार्ता करते हुए कितने ही दिनों तक श्रीपुर नगर में रहकर सीताजी अयोध्या वापस गईं। हनुमान ने अपनी बहन को बहुत कीमती वस्तुयें भेंट में देकर खूब ही भावभरी विदाई दी।

एक बार देशभूषण-कुलभूषण केवली भगवंत अयोध्या पधारे। वंशगिरि पर्वत पर स्वयं ने जिनका उपसर्ग दूर किया था, उन मुनि-भगवंतों के अयोध्या पधारने से राम-लक्ष्मण-सीता को अतिआनन्द हुआ। त्रिलोकमंडन हाथी के ऊपर बैठकर सभी उनके दर्शन करने गये। उनकी वाणी में अपने पूर्व भवों की बात सुनकर भरत को वैराग्य हो गया, इससे उसने मुनिदीक्षा अंगीकार कर ली; उसकी माता कैकेई ने भी दीक्षा ले ली; भरत के पूर्वभव के मित्र त्रिलोकमंडन हाथी ने भी वैराग्य पाया और सम्यग्दर्शन पूर्वक उसने श्रावक के व्रत धारण किये।

## सीता की अग्निपरीक्षा और दीक्षा

राम-लक्ष्मण अयोध्या में राज्य कर रहे हैं। अयोध्या की प्रजा भी सभी प्रकार से सुखी है, परंतु मानो पुण्य की अध्रुवता साबित करती हुई एक अफवाह घर-घर में फैल रही है कि सीताजी रावण की लंका में बहुत दिन रहीं और राम ने उन्हें वापिस रख लिया – ये ठीक नहीं किया। उनके ही अनुसार दूसरे दुष्ट लोग भी करने लगे हैं।

नगरजनों के द्वारा ये अपवाद सुनकर राम ने अपयश के भय से गर्भवती सती सीता का त्याग कर उसे वन में भेज दिया। जिस सती सीता को रावण उठाकर ले गया था, उसे उससे भी अधिक दुःख तब हुआ, जब राम ने उसका त्याग किया। वैराग्य वंत धर्मात्मा सीता घोर जंगल में

अकेली बैठी-बैठी रो रही है। पूर्व का कोई अशुभकर्म का उदय आया, वह फल दिखाकर क्षणमात्र में चला गया और तुरन्त ही शुभयोग से वज्रजंघ राजा वहाँ आया; उसने सीता को अपनी धर्म की बड़ी बहन के रूप में रखा। सीता को लव-कुश पुत्र हुए, उन्होंने राम-लक्ष्मण के साथ लड़ाई की। हनुमान वगैरह सीता को पुनः अयोध्या ले आये, परन्तु राम ने सीता की अग्निपरीक्षा का आग्रह किया।

बड़े भारी अग्निकुंड में पंच परमेष्ठी का स्मरणपूर्वक सीताजी उसमें कूद पड़ीं....और शील का महान प्रभाव जगत में प्रसिद्ध हुआ। अग्नि के स्थान पर जल हो गया। सीता के शील का ऐसा प्रभाव देखकर हनुमान वगैरह खूब प्रसन्न हुए।

संसार की विचित्र स्थिति देखकर सीता को महा वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे अर्जिका बनने को तैयार हुईं। लव-कुश माँ-माँ करते सीता के चरणों से लिपट गये, राम रोने लगे, प्रजा रोने लगी; परंतु अब सीता को संसार का मोह नहीं रहा था बस, वे तो कोमल केशों का लुंचन

करके संसार छोड़कर अर्जिका हो गईं और सफेद साड़ी में परिणामों की शुद्धता सहित शोभ उठीं।

## अंजना का वैराग्य और दीक्षा

हनुमान ने श्रीपुर नगरी जाकर अंजना माता से सभी बातें कीं। सीताजी का वनवास, अग्निपरीक्षा, शील का प्रभाव – इन सभी बातों को सुनकर, अपनी एक धर्म सखी का ऐसा प्रभाव देखकर अंजना खुश हुई; परंतु जब हनुमान ने कहा कि "सीता ने दीक्षा ले ली है"....यह बात सुनते ही अंजना का चित्त भी संसार से उदास हो गया...."वाह सीता ! तूने उत्तम मार्ग लिया। जीवन में सुख-दु:ख के अनेक प्रसंगों के बीच भी धैर्य रखकर तूने आत्मा की साधना की और अंत में अर्जिका हो गई। वाह बहन ! धन्य है तू ! मैं भी तेरे समान दीक्षा लूँगी।"

"बेटा हनुमान ! सीताजी ने दीक्षा ली, वैसी ही दीक्षा लेकर अब मैं भी अर्जिका होना चाहती हूँ। संसार में बहुत दु:ख-सुख देखे, अब तो राग-द्वेष से रहित चैतन्यपद को साधकर शीघ्र इस संसार से छूटना है।"

"बेटा ! मुझे संसार में एक तेरा मोह था, तेरा राग मैं छोड़ नहीं सकती थी; परंतु अब जैसे सीता ने लव–कुश का मोह छोड़ा, वैसे ही मैं भी तुझे छोड़कर अर्जिका बनूँगी। मैंने पहले से ही निश्चय किया था कि जब सीता अर्जिका बनेगी, तब मैं भी अर्जिका बनूँगी। वह धन्य घड़ी अब आ पहुँची है, इसलिए बेटा हनुमान ! तू मुझे दीक्षा लेने की स्वीकृति दे।"

जब से सीता की अग्नि परीक्षा का प्रसंग देखा था, तब से स्वयं हनुमान का मन एकदम वैराग्यमय हो गया था। माता की वैराग्यभरी बातें सुनकर तुरंत उसने अनुमोदना की –

"धन्य माता ! आपका विचार अति उत्तम है। पहले से ही आपने मुझे वैराग्य का अमृत पिलाया है, अत: मैं भी वैराग्य के लिए आपको नहीं रोकता। माता ! इस संसार में प्रीति-अप्रीति में कहीं शांति नहीं; शांति चैतन्यधाम में ही है; उसे जाननेवाली आप खुशी से अर्जिका होओ। मैं

आपको नहीं रोकता। मैं भी थोड़े ही समय बाद इस असार-संसार को छोड़कर मोक्ष को साधूँगा।"

इस प्रकार कहकर हनुमान ने अपनी माता की दीक्षा का बड़ा उत्सव किया। सीताजी के समान अंजनादेवी भी अर्जिकापने से शोभ उठीं! धन्य दोनों सखी !

## हनुमान की मेरुयात्रा

कर्णकुण्डल अथवा श्रीपुर नगर में पवनपुत्र राजा हनुमान आनंद से राज्य करते हैं; वहाँ उनकी 'सदन निवासी तदपि उदासी' – ऐसी दशा वर्त रही है। माता अंजना की दीक्षा के बाद हनुमान का चित्त संसार में कहीं नहीं लगता। गगन-गामित्व वगैरह अनेक विद्यायें, महान ऋद्धियाँ, विमान, सुन्दर बाग-बगीचे, महल, राज्य-परिवार – इन सबके मध्य रहने पर भी उनकी चेतना अपने इष्ट ध्येय को कभी भी नहीं चकती।

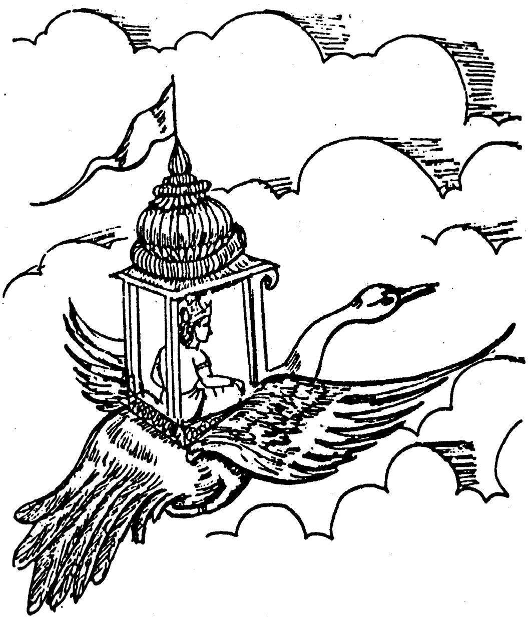

वसंत ऋतु आई....जैसे मुनिराज के अन्तर में रत्नत्रय का बगीचा खिल उठता है, वैसे ही बाग-बगीचे फल-फूलों से खिल उठे। जब अन्य

संसारी भोगासक्त जीव तो बाग-बगीचों में केली करने लगे, तब जिसका चित्त जिन-भक्ति से भीगा हुआ है, जिसके अंतर में वैराग्य के फूल महक रहे हैं – ऐसे हनुमान को तो मेरुतीर्थ की वंदना की भावना जगी।

अत्यंत हर्षपूर्वक रानियों को साथ लेकर वे सुमेरुपर्वत की तरफ चले, हजारों विद्याधर भी उनके साथ यात्रा करने चले। अहा, हनुमान का संघ तीर्थयात्रा करने आकाशमार्ग से सुमेरु की तरफ जा रहा है। रास्ते में अनेक भव्य जिनालयों तथा मुनिवरों के दर्शन करने से सभी आनंदित हुए। बीच में भरतक्षेत्र के बाद हिमवत और हरिक्षेत्र आया, (जहाँ जुगलिया जीवों की भोगभूमि है) तथा हिमवान, महाहिमवान और निषध – ये तीन महापर्वत आये; इन तीनों कुलाचलों के अकृत्रिम जिनालयों के दर्शन करके आनंद करते-करते सभी मेरुपर्वत पर आ पहुँचे।

अहो ! जिस पर इन्द्रों ने अनंत तीर्थंकरों का जन्माभिषेक किया है। जहाँ से अनंत मुनिवरों ने मोक्ष पाया है। जिस पर रत्न के जिनबिम्ब सदा ही शाश्वत विराजमान हैं, ऋद्धिधारी मुनिवर भी यात्रा के लिए आकर जहाँ आत्मा का ध्यान धरते हैं – ऐसे इस शाश्वत तीर्थ की अद्भुत शोभा देखकर हनुमान को जो महान आनंद हुआ, उसकी क्या बात कहें? अरे ! दूर-दूर से ही जिस तीर्थ का नाम सुनते ही अपना मन भक्ति से उसके दर्शन के लिए उल्लसित होता है। उस तीर्थ के साक्षात् दर्शन करने से जो हर्ष होता है, उसकी क्या बात करें ? – मात्र एक आत्मानुभूति के सिवाय जगत में जिनवर-दर्शन जैसा आनंद अन्यत्र कहीं नहीं। हनुमान सभी को मेरूतीर्थ का दिव्य शोभा बतलाते हैं, जिनवर देवों की अपार महिमा समझाते हैं और बारंबार जिनेन्द्रदेव के समान निज स्वरूप के ध्यान की प्रेरणा जगाते हैं।

सुमेरू पर्वत पर सबसे प्रथम भद्रशालवन है। उसमें १६ शाश्वत जिनालय हैं; पर ऊपर जाने पर दूसरा नंदनवन तथा तीसरा सोमनसवन आता है। वहाँ भी १६-१६ अकृत्रिम मंदिर हैं; उन मंदिरों की अद्भुत

शोभा देखते ही आश्चर्य होता है और उनमें विराजमान भगवान की वीतरागता देखते ही आश्चर्य से भी पार ऐसी चैतन्यवृत्तियाँ जाग उठती हैं – ऐसे तीनों वनों में आनंद से दर्शन करके जय-जयकार करते सभी मेरु के सबसे ऊपर चौथे और अंतिम पांडुकवन में आये। कितने ही देव भी हनुमानजी के साथ मेरु की यात्रा में भाग ले रहे हैं।

हनुमानजी सभी को बतलाते हैं –

"देखो, ये स्फटिक की पांडुकशिला ! ये महापूज्य है। यहाँ भरतक्षेत्र के तीर्थंकर भगवंतों का जन्माभिषेक होता है, इससे यह कल्याणक तीर्थभूमि है। अनंत मुनिवर यहाँ से ही मोक्ष पधारे हैं, इससे ये शाश्वत सिद्धक्षेत्र भी है। यहाँ परम अद्भुत जिनालयों में जगमग करते हुए रत्नमय जिनबिम्ब हैं, मानो अभी-अभी केवलज्ञान खिला (प्रगट हुआ) हो – ऐसे शोभित हो रहे हैं और आत्मा के पूर्ण स्वरूप को प्रकाशित करते हैं, छत्र-चँवर-भामंडल वगैरह की दिव्य शोभा से इस पांडुकवन के मंदिर ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो मेरुपर्वत का रत्नजड़ित मुकुट हो ?"

(वाचक ! अभी हनुमानजी वगैरह जिस स्थान की यात्रा कर रहे हैं, वह कितना ऊँचा है ? – क्या इसका पता है ? सुनो, मेरुपर्वत एक लाख योजन ऊँचा है, उसके ऊपर के भाग में पांडुकवन है। सूर्य-चन्द्र तो पूरे एक हजार योजन ऊँचे भी नहीं, ये तो सूर्य-चन्द्र से भी अधिक लगभग ९९००० योजन ऊँचे (अर्थात् लगभग ४० करोड़ मील ऊँचे) हैं। अभी अपने कथा-नायक हनुमानजी वहीं की आनंद से यात्रा कर रहे हैं।

हनुमान तथा समस्त विद्याधरों को मंदिरों के दर्शन से अति ही हर्ष हुआ; बहुत भाव से जिनगुण गाते-गाते मंदिरों की प्रदक्षिणा की। जैसे सूर्य-चन्द्र मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं, वैसे ही सूर्य समान तेजस्वी हनुमान वगैरह एक लाख योजना जितनी ऊँचाई पर मेरु की प्रदक्षिणा करने लगे, बारम्बार दर्शन करने लगे; बाद में सभी ने कल्पवृक्षों के पुष्पों से और रत्नों के अर्घ्य द्वारा महान विनय से पूजन की।

अहा ! मेरु जैसा महातीर्थ, जिसमें सर्वज्ञ-वीतराग जैसे पूज्य देव, उसमें भी हनुमान जैसे चरमशरीरी साधक पुजारी – उस महान पूजा की क्या बात करना ? बहुत से देव और विद्याधर आश्चर्य पाकर जैनधर्म की महिमा से सम्यक्त्व पाये। सभी के हृदय और नेत्र हर्षित हो उठे। पूजन के बाद हाथ में वीणा लेकर हनुमानजी ने अद्भुत भक्ति से जिनगुण गाये....कि अप्सरायें भी भक्ति से नाचने लगीं। ऐसा लगता था मानो वीतरागी होते-होते बाकी बचा हुआ सारा का सारा शुभराग यहाँ उडेल दिया हो ! इसप्रकार हनुमानजी ने खूब-खूब भक्ति की। देहभाव से पार होकर आत्मभावों में तन्मयता पूर्वक होने वाली ऐसी अद्भुत भक्ति ऐसे मोक्ष के साधकों की ही होती है। अहो, ऐसी जिनेन्द्र-भक्ति देखने वालों का भी जन्म सफल हो गया। वाह रे वाह, तद्भव मोक्षगामी हनुमान ! तुम्हारी अद्भुत जिनभक्ति ! ये भव्य जीवों को रोमांचित एवं उल्लसित करके मोक्ष का उत्साह जगाती है।

इस प्रकार हनुमानजी ने मेरुतीर्थ पर अति भक्तिभाव पूर्वक दर्शन-पूजन-भक्ति सहित यात्रा की। अनेक मुनिराज वहाँ विराजमान थे, उनके भी दर्शन किये तथा उनसे शुद्धात्मा का उपदेश सुना। हजारों जीवों ने सम्यक्त्व प्राप्त किया। ध्यानस्थ वीतरागी मुनिराजों को देखकर हनुमान भी ध्यान करने लगे तथा स्वरूप एकाग्रता द्वारा आत्मा को ध्याते-ध्याते कोई परम अद्भुत निर्विकल्प आनंद की अनुभूति की ! अहा ! उसकी तो क्या बात !!

इसप्रकार इष्ट ध्येय को पाकर और मुनिवरों का मंगल आशीष लेकर हनुमानजी ने मेरु पर्वत से वापिस भरत क्षेत्र में (स्वस्थान में) आने की विदाई ली। रास्ते में सुर-दुन्दुभि नाम के पर्वत पर रात्रि वास किया। रात में सभी आनंदपूर्वक तीर्थयात्रा और जिनेन्द्र महिमा की चर्चा करते थे....सर्वज्ञदेव के स्वरूप की पहिचान होने से आत्मा का शुद्ध चैतन्यस्वरूप किस प्रकार पहचाना जाता है ? राग तथा ज्ञान का भेदज्ञान होकर जीव को अपूर्व सम्यक्त्व किस प्रकार प्रगट होता है ? इन बातों को हनुमानजी अत्यंत प्रमोदपूर्वक समझाते थे।

# हनुमानजी का वैराग्य-प्रसंग

अंधेरी रात है, आकाश में तारागण जगमगा रहे हैं और अद्भुत अध्यात्म चर्चा में सभी मग्न हैं....इतने में ही अचानक आकाश से घररर-घररर की आवाज करता हुआ एक तारा टूटा और चारों तरफ से बिजली जैसी चमकी।

बस ! तारा टूटते ही मानो हनुमानजी का संसार ही टूट गया हो ! तारे को गिरता देखते ही हनुमानजी को भी तुरंत संसार से विरक्ति आ गई। जगत की क्षणभंगुरता देखते ही वे देहादिक संयोगों की अनित्यता का चिंतन करने लगे। परम वैराग्य से बारह भावनायें भाने लगे। अरे, बिजली की चमक के समान इन संयोगों और रागादि की क्षणभंगुरता – ऐसे क्षणभंगुर संसार में चैतन्य तत्त्व के सिवाय दूसरा कौन शरण है ?

ये राजपाट भोग सामग्री कुछ भी इस जीव को शरण या साथीदार नहीं; रत्नत्रय की पूर्णता ही शरणरूप, साथीदार और अविनाशी मोक्षपद को देने वाली है। हनुमानजी विचारते हैं – 'बस अब तो मुझे शीघ्र रत्नत्रय की पूर्णता का ही उद्यम कर्त्तव्य है।''

हनुमानजी ने अपनी भावना मंत्रियों और रानियों को बतलाई – ''अब मैं इस संसार को छोड़कर मुनि होना चाहता हूँ, और इस संसार का छेद करके मोक्षपद प्राप्त करना चाहता हूँ....अरे अरे ! राग के वश जीव

संसार में दुःख भोगता है, वीतरागता के सिवाय कहीं सुख नहीं हैं।"

**इसलिए न करना राग किंचित् कहीं भी मोक्षेच्छु को।**
**वीतराग होकर इस तरह, वह भव्य भवसागर तिरे॥**

अरे रे, मूर्ख जीव अल्पकाल के विषय-भोगों के पीछे अनन्त काल का दुःख भोगते हैं, परन्तु विषयों में सुख कैसा ? यह तो मात्र कल्पना है। देवलोक के भोगों में भी आत्मा का सुख नहीं। चैतन्य का अतीन्द्रिय सुख जीव का स्वभाव है और यह सुख सदाकाल टिकने वाला है। अतः अब मैं मुनि होकर आत्मा के अतीन्द्रिय सुख की पूर्णता को साधूँगा।

महाराजा हनुमान ऐसी भावनापूर्वक मुनि होने को तैयार हो गये। मंत्रियों ने बहुत समझाया, रानियों ने भी अपनी अश्रुभीगी पलकों से उन्हें रोकने की बहुत कोशिश की; परन्तु हनुमान को उनकी दृढ़ता से उन्हें कौन डिगा सकता है ? दृढ़चित्तवाले हनुमान वैराग्य भावना से जरा भी नहीं डिगे....वे कहने लगे –

"हे मंत्रियो, हे रानियो ? वृथा है यह मोह इसे छोड़ो, इस संसार के भयंकर दुःखों को क्या तुम नहीं जानते ? मोह के वश होकर जीव ने संसार में अनेक भव धारण कर परिभ्रमण किया। अब तो बस हो इस संसार से ! मुझे बहुत समय से मुनि होने की भावना तो थी ही, परन्तु मुझे माता का मोह विशेष था, उस मोह का बंधन मैं तोड़ नहीं सकता था, अब तो जब मेरी माता अंजना ही मेरा मोह तोड़कर अर्जिका बन गई हैं, तब मेरा भी मोह टूट गया है। मेरी माता ही मानो मुझे आवाज देकर वैराग्यमार्ग में बुला रही हैं। राग का एक अंश भी अब मुझे सुहाता नहीं।

हे रानियो ! तुम शांत होओ; रुदन करके व्यर्थ में ही आर्त्तध्यान करके आत्मा का अहित न करो....हे मंत्रियो ! तुम राज्यपुत्र का राज्याभिषेक करके राज्य-व्यवस्था संभालना ! हम तो अब जिन-दीक्षा लेकर मुनिवरों के साथ रहेंगे और शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा को ध्याकर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। एक क्षण का भी प्रमाद अब मुझे सुहाता नहीं।"

वाह रे वाह ! जिनशासन का वीतरागी रहस्य जानने वाले राजा हनुमान तो आभूषण उतारकर मुनि होने चले। रानियाँ भी हनुमान के उपदेश से प्रतिबोध पाकर खेद छोड़कर दीक्षा लेने को तैयार हुईं। हजारों विद्याधर भी वैराग्य पाकर हनुमान के साथ ही दीक्षा लेने को तैयार हुए। सिद्धालय में जिस मार्ग से अनन्त जिनवरेन्द्र मोक्ष पधारे, उसी मार्ग पर जाने के लिए सभी उद्यमी हुए। वाह रे वाह ! धन्य वह प्रसंग !!

निकट में ही चारण ऋद्धिधारी मुनिवरों का संघ विराजमान था। मोक्षमार्ग को साधनेवाली मुनिराजों की भव्य मंडली आत्मध्यान में मग्न बैठी थी। वाह ! मोक्ष के साधक मुमुक्षुओं की मंडली देखकर हनुमान के आनन्द का पार न रहा।

मोक्ष-मंडली में मिल जाने के लिए महा विनय से उनको वंदन करके हनुमान ने प्रार्थना की – ''हे प्रभो ! मेरा चित्त इस संसार से सर्वथा विरक्त हो गया है और मैं शुद्ध आत्मतत्त्व की सिद्धि के लिये जिन-दीक्षा लेना चाहता हूँ; अतः आप कृपा करके मुझे पारमेश्वरी दीक्षा दीजिए !

प्रभो ! अब मैं भी इस भव-दुःख से छूटकर जन्म-मरण रहित परमपद को प्राप्त करना चाहता हूँ।'' मुनिवरों ने हनुमान के वैराग्य की प्रशंसा की – ''अहो भव्य ! तुमने उत्तम विचार किया....तुम चरमशरीरी हो, शीघ्र ही अपना आत्मकल्याण करो। इस जगत को तुमने असार जाना है और परम सारभूत चैतन्यतत्त्व को तुमने अनुभवा है, इससे तुम्हें मुनि बनकर मोक्ष को साधने की कल्याणकारी बुद्धि उपजी है – धन्य है तुम्हें! तुम शीघ्र मुनिधर्म अंगीकार करके अपने आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थापित करो।''

श्री मुनिवरों की आज्ञा पाकर हनुमानजी ने उनके चरणों में बारम्बार नमस्कार किया। मुकुट हार आदि समस्त वस्त्राभूषण उतारे.... अन्त में समस्त संसार का राग भी छोड़ा – ऐसे सर्व प्रकार से निर्ग्रंथ होकर मोह-बंधन तोड़कर वीर हनुमान मुनि हुये। कामदेव होने से उनका शरीर का रूप तो अद्भुत था ही, अब तो रत्नत्रय के सर्वोत्कृष्ट आभूषणों से उनका आत्मा अतिशय रूप से सुशोभित होने लगा।

वाह शुद्धोपयोगी संत हनुमान ! आपको हमारा नमस्कार हो !!

हनुमानजी के साथ में अन्य हजारों विद्याधर भी मुनि हुये। हजारों विद्याधर रानियाँ, श्रीबंधुमती अर्जिकाजी के पास जाकर अर्जिका हुईं। हनुमानजी की दीक्षा के इस महावैराग्यमय प्रसंग को देखकर अनेक प्रजाजनों ने श्रावक के व्रत लिये। इसप्रकार जैनशासन का महान उद्योत हुआ।

श्री शैल मुनिराज शैलेश (पर्वत) से भी अधिक अचल रूप से चारित्र का पालन करने लगे। उनका अद्भुत वीतरागी चारित्र देखकर इन्द्र भी उनको नमस्कार करके उनकी प्रशंसा करने लगे। राम-लक्ष्मण ने भी उनको वंदन किया। उन्हें मोक्षलक्ष्मी की भी आकांक्षा नहीं थी ! वे तो मात्र अपनी निर्विकल्प स्वानुभूति में ही मग्न थे, फिर भी उनका दिव्य वीतरागी रूप देखकर मोक्षलक्ष्मी भी प्रसन्न होकर दौड़ी आई ! परन्तु शुद्धोपयोग

में लीन मुनिराज हनुमान तो उस समय शुक्लध्यान के अहिंसा चक्र द्वारा सर्व कर्मों का क्षय करके ज्ञानानन्द स्वभाव को साध रहे थे। केवलज्ञान होने पर वे विहार करते हुए मांगी-तुंगी पधारे और वहाँ के तुंगीभद्र गिरि-शिखर से मोक्षदशा प्रगट करके सिद्धपद प्राप्त किया, अभी भी वह मुक्तात्मा अपने परम ज्ञान-आनंद सहित बराबर तुंगीभद्र के ऊपर समश्रेणि में, लोकाग्र में, सिद्धालय में, अनंत सिद्ध भगवंतों के साथ विराज रहे हैं, उनको हमारा नमस्कार हो।

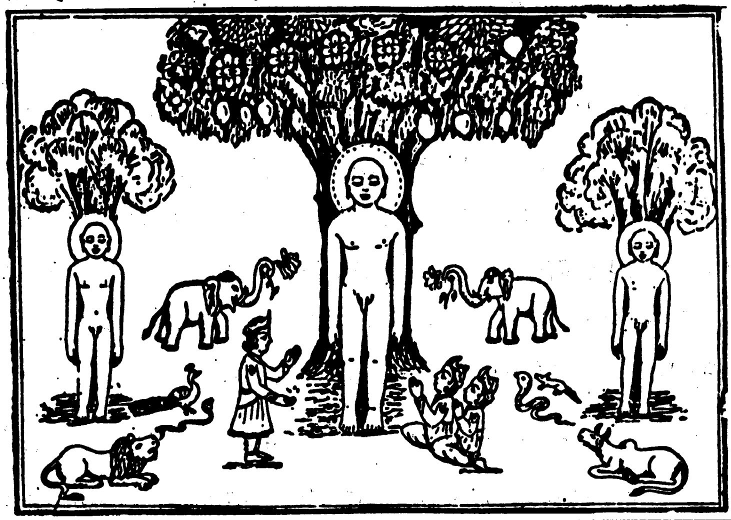

## जिनदर्शन का महात्म्य

"अरे, इस जगत में लक्ष्मी के मोह को धिक्कार है।

(पृष्ठ २५)

हे जीवो ! तुम लक्ष्मी पर गर्व मत करो, लक्ष्मी को प्राप्त कर जिनदेव की भक्ति में तत्पर रहो। (पृष्ठ ३८)

"हे जीव ! तू देव-गुरु-धर्म की विराधना कभी मत करना। सदा बहुमान पूर्वक देव-गुरु-धर्म की आराधना करना।

(पृष्ठ ३८)

"देखो ! जिनदर्शन की महिमा ! जिसके प्रताप से पूर्व के पापकर्मों का भी नाश हो जाता है। (पृष्ठ ५१)

**– दर्शन कथा से साभार**

# हमारे प्रकाशन

| | | |
|---|---|---|
| १. | चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी)<br>[ ५२८ पृष्ठीय प्रथमानुयोग का अद्वितीय सचित्र ग्रंथ ] | ५०/- |
| २. | चौबीस तीर्थंकर महापुराण (गुजराती)<br>[ ४८३ पृष्ठीय प्रथमानुयोग का अद्वितीय सचित्र ग्रंथ ] | ४०/- |
| ३. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १) | ७/- |
| ४. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग २) | ७/- |
| ५. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ३)<br>(उक्त तीनों भागों में छोटी-छोटी कहानियों का अनुपम संग्रह है।) | ७/- |
| ६. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ४) महासती अंजना | ७/- |
| ७. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ५) हनुमान चरित्र | ७/- |
| ८. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ६)<br>(अकलंक-निकलंक चरित्र) | ७/- |
| ९. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ७)<br>(अनुबद्धकेवली श्री जम्बूस्वामी) | १२/- |
| १०. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ८)<br>(श्रावक की धर्मसाधना) | ७/- |
| ११. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ९)<br>(तीर्थंकर भगवान महावीर) | १०/- |
| १२. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १०) कहानी संग्रह | ७/- |
| १३. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ११) कहानी संग्रह | ७/- |
| १४. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १२) कहानी संग्रह | ७/- |
| १५. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १३) कहानी संग्रह | ७/- |
| १६. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १४) कहानी संग्रह | ७/- |
| १७. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १५) कहानी संग्रह | ७/- |
| १८. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १६) नाटक संग्रह | ७/- |
| १९. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १७) नाटक संग्रह | ७/- |
| २०. | जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १८) कहानी संग्रह | ७/- |
| २१. | अनुपम संकलन (लघु जिनवाणी संग्रह) | ६/- |
| २२. | पाहुड़-दोहा, भव्यामृत-शतक व आत्मसाधना सूत्र | ५/- |
| २३. | विराग सरिता (श्रीमद्‌जी की सूक्तियों का संकलन) | ५/- |
| २४. | लघुतत्त्वस्फोट (गुजराती) | |
| २५. | भक्तामर प्रवचन (गुजराती) | |
| २६. | अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) | १०/- |

# हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

**जन्म**
वीर संवत् २४५१
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

**सत्समागम**
वीर संवत् २४७१
(पूज्य गुरुदेव श्री से)
राजकोट

**देहविलय**
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

**ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा**
वीर संवत् २४७३
फागण सुदी १ (उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार, ब्रह्मचारी हरिलाल जैन की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक आत्मधर्म (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिन्होंने उन्हें 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखनेवाला नहीं मिलेगा..... ।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए जैन बालपोथी के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण- इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), जैनधर्म की कहानियाँ (भाग 1 से 6), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्म प्रकाश, मुक्ति का मार्ग, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, साहित्य सृजन एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनेक बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक ''मैं ज्ञायक हूँ, .. मैं ज्ञायक हूँ... '' की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ- यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

मुद्रण व्यवस्था : जैन कम्प्यूटर्स, फोन: 0141-2701056, फैक्स : 2709865, मो.: 9414717816